खण्ड 5
पहचान की राजनीति

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खंड 5 पहचान की राजनीति

पहचान की राजनीति के प्रतीक जैसे कि जाति, धर्म, जेंडर, नृजातियता, इत्यादि भारत में पहचान की राजनीति के स्रोत है। यह खंड इसी पहचान की राजनीति के बारे में है, जिसमें 4 इकाइयाँ है। इकाई 12 का संबंध जाति आधारित राजनीति से है, जैसे कि ओ.बी.सी. दलित, महिलाऐं एवं राजनीति। इकाई संख्या 13 का संबंध भाषाई एवं नृजातीय समूहों से है। इकाई संख्या 14 का संबंध क्षेत्र एवं जनजातीय पहचान के बारे में है तथा इाकई संख्या 15 नये सामाजिक समूहों जैसे कि मछुआरे, पर्यावरण समूह तथा एल.जी.बी.टी.क्यू. समूहों के बारे में हैं।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 12 दलित, ओ.बी.सी. और महिलाएँ*

संरचना

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 दलित कौन हैं?

12.3 दलितों की लामबंदी

12.3.1 स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व

12.3.2 औपनिवेशिक काल के बाद में दलित आंदोलन

12.4 ओ.बी.सी कौन है?

12.5 महिलाएँ

12.6 संदर्भ

12.7 सारांश

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य दो प्रकार की पहचान की राजनीति से अवगत कराना हैं पहला जाति तथा जेन्डर। विशेषकर, जाति के संदर्भ में हम दलितों एवं ओ.बी.सी. के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। वहीं दूसरी तरफ जेंडर के संदर्भ में हम महिलाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :–

- दलित एवं ओ.बी.सी. वर्गों के अर्थ एवं अवधारणा को समझा सकेंगे;
- उनके प्रमुख मुद्दों की तथा उनके लामबंद की विशेषताओं की पहचा करा पाऐंगे;
- महिलाओं के मुद्दों की चर्चा कर सकेंगे, और
- भारत में उनके सशक्तिकरण को समझा सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

बिना जाति और जेंडर की पहचान विशेषकर दलित, ओ.बी.सी. तथा महिलाओं के भारतीय समाज और राजनीति की कल्पना करना असंभव है। इसलिए हमें यहाँ प्रत्येक वर्ग को समझना आवश्यक है क्योंकि ये न केवल आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक जीवन को प्रभावित करते हैं, बल्कि ये समाज के कमजोर वर्गों से संबंधित भी है। पिछले कुछ वर्षों में उनकी राजनीतिक चेतना और राजनीतिक एकजुटता में वृद्धि देखी गई है। उनकी राजनीतिक लामबंदी के जवाब में, राज्य ने उनके लिए कुछ नितियाँ निर्धारित की हैं। इन नीतियों की वजह से उनके जीवन में सुधार आया है तथा वे सशक्त हुए हैं। उनके जीवन स्तर में सुधार के बावजूद स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के

* डॉ. अरविंद कुमार, ऐस्टिटेंट प्रोफेसर, सेंटर फॉर शोसल एक्सलूजन एंड इंक्लूसिव पालिसीज, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली – 110025

काल में दलितों ओ.बी.सी. एवं महिलाऐं अभी भी भारत में कमजोर वर्गों की श्रेणी में आते हैं और उनकी राजनीतिक एकजुटता लगातार प्रक्रियाशील है।

12.2 दलित कौन हैं?

दलित शब्द एक मराठी भाषा का शब्द है जिसका मतलब टूटा हुआ या बिखरा हुआ होता है। दलित शब्द 1960 के दशक में दलित साहित्यिक आंदोलन के समय में काफी, लोकप्रिय हुआ था तथा 1970 के दशक में महाराष्ट्र में एक दलित संगठन दलित पेंथर के नाम से गठित हुआ था। दलित पेंथर ने दलितों को नये तरीके से परिभाषित करने का प्रयास किया था जिसमें समाज के सभी वंचित समूहों जैसे कि एस.सी., एस.टी., नए बौद्ध, गरीब किसान, मजदूर वर्ग तथा महिलाऐं को शामिल किया गया था। इस शब्द को 1990 के दशक में अखिल भारतीय स्तर पर काफी पहचान मिली थी। लेकिन इस शब्द को लोकप्रिय बनाने में राजनीति कार्यकर्त्ताओं, शिक्षाविदों एवं मीडिया दलित शब्द का प्रयोग केवल अनुसूचित जाति (एस.सी.) के वर्गों तक ही सीमित कर दिया गया। अतः 1990 के दशक से सांस्कृतिक, राजनीतिक और अकादमिक साहित्य और वाद–विवाद में दलित शब्द का प्रयोग अनुसूचित जातियों के लिए किया जाने लगा। इस प्रकार, दलित या एस.सी. (अनुसूचित जाति) को एक दूसरे के पूरक प्रयोग किया जाने लगा। लेकिन इन दोनों में बहुत अंतर भी हैं। दलित सामाजिक और राजनीतिक श्रेणी का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि अनुसूचित जाति का प्रयोग ज्यादातर प्रशासनिक और कानूनी श्रेणी में किया जाता है।

अनुसूचित जातियों को न केवल समाज के निचले पायदान पर रखा जमा बल्कि उन्होंने सदियों से अस्पृश्यता (छुंआछूत) को भी सहा है। भारतीय संविधान में इन वर्गों के लिये कुछ सकारात्मक नीतियों का प्रावधान किया गया है। भारत सरकार अधिनियम '1935' में सर्वप्रथम 'अनुसूचित जाति' श्रेणी का सूत्रपात हुआ था जिसने सभी अधिकारिक उद्देश्यों के लिये 'डिप्रेस्ड क्लासेज' की अवधारणा को ''अनुसूचित जातियों'' की अवधारणा में बदल दिया था। 1950 में संविधान के लागू होने के बाद अनुच्छेद 17 के अंतर्गत छूआछूत को कानूनी तौर पर प्रतिबंधित कर दिया है। यदि कोई व्यक्ति छुआछूत करेगा उसके खिलाफ सख्त कार्यवाही की जायेगी। दलित सामाजिक सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक मुद्दों एवं लोकतांत्रिक प्रक्रिया में अपनी सशक्त भागीदारी निभा रहे हैं।

12.3 दलितों की लामबंदी

सामाजिक तौर पर शोषित एवं गरीब होने के कारण से दलितों ने भारतीय समाज में बहुत सी समस्याओं का सामना किया है। इनमें बेइज्जती, अस्पृश्यता, महिलाओं को शोषण, इत्यादि शामिल हैं। हालांकि उनकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन आया है लेकिन अभी भी उनके खिलाफ भेदभाव एवं समस्याऐं जारी है। राजनैतिक दलों एवं दलित संगठनों ने उनके मुद्दों पर दलितों को लामबंद भी किया है, चाहे वह उनकी सामाजिक सांस्कृतिक पहचान हो या राजनीतिक सशक्तिकरण हो या आर्थिक अवसरों की बात हो। यह भाग भारतीय राज्यों में दलितों की लामबंदी के मुद्दों के बारे में है।

12.3.1 स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व

समकालीन दलित आंदोलन की विरासत औपनिवेशिक समय में दलित लामबंदी, जो औपनिवेशिक भारत में कई भागों में फैली थी, में मिलती है। गेल ओम्वेट की किताब ''दलित एण्ड द डैमॉक्रेटिक रेवोल्यूशनः डॉ. अंबेडकर, एण्ड द दलित मूवमेंट इन कालोनियल इंडिया'' के अंतर्गत इसकी विस्तृत चर्चा की गई है। चार प्रकार की महत्वपूर्ण लामबंदियों को यहाँ पर विशेष रूप से चर्चा करने की जरूरत है। प्रथम, महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले द्वारा चलाया गया सत्यशोधक आंदोलन जिसने बिना किसी ब्राह्मण पुजारी के सभी शादी समारोहों एवं अन्य धार्मिक परंपराओं को कृषक परंपरा से मनाने की वकालत की थी। सावित्री बाई फुले ने आधुनिक भारत में महिलाओं के लिये खासकर लड़कियों के लिये प्रथम स्कूल की शुरुआत की थी तथा मुस्लिम एवं अछूत लड़कियों के लिये शिक्षा पर भी काफी जोर दिया था, को प्रोत्साहन दिया जिसमें जेंडर समानता पर। दूसरा, ई.वी. रामास्वामी नायकर जिन्हें हम पेरियार के नाम से भी जानते हैं, उन्होंने म्रदास प्रेसीडेंसी में आत्म–सम्मान आंदोलन चलाया। इस आंदोलन ने दक्षिण भारत में जाति–विरोधी चेतना को बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। तीसरा, नामसूद्रा (जिसे हमें चांडाल के नाम से भी जानते है), आंदोलन उन्होंने बंगाल प्रेसीडेंसी में बंगाली समाज में निम्न जातियों को एकजुट करने की कोशिश की थी, तथा चौथा, पंजाब में आदी–धर्म आंदोलन जिसने अछूत वर्गों की पहचान को अलग पहचान दिलाई चाहे वे किसी भी धर्म के हो हिन्दू, सिख या मुस्लिम। इन सभी आंदोलनों ने जाति आधारित असमानताओं पर हमला किया था।

1920 सदी के मध्य से डॉ. अंबेडकर ने अछूतों या डिप्रेस्ड क्लासिस (कमजोर वर्गों) या अनुसूचित जातियाँ जिन्हें आज दलितों के नाम से जाना जाता है, की सामाजिक, राजनीतिक चिंताओं पर आजादी के समय से पूर्व एक बुद्धिजीवी नेतृत्व प्रदान किया था। डॉ. अंबेडकर ने गोल मेजा सभा में डिप्रेस्ड क्लासिज (कमजोर वर्गों के लिए के) प्रथक निर्वाचक मंडल की माँग की, जिसे औपनिवेशिक सरकार ने मान लिया था। परन्तु 1932 में, पूना समझौते के तहत् जिस पर गाँधी एवं अंबेडकर ने दस्तखत किये थे। इसमें संयुक्त निर्वाचन क्षेत्रों का प्रावधान किया गया। इसने अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को राज्य विधानसभा एवं केन्द्रिय संसद में प्रतिनिधित्व प्रदान किया। 1936 में, अंबेडकर ने विभिन्न जातियों की मजदूर वर्गों को संगठित करने के उद्देश्य से इंडिपेडेंट लेबर पार्टी (ILP) की स्थापना की थी। 1942 में आल इंडिया शिकल्ड कास्ट फेडरेशन (AISCF) का गठन किया, तथा उन्होंने अपनी मृत्यु से पूर्व 6 दिसंबर, 1956 को एक नई पार्टी रिपब्लिक पार्टी ऑफ इंडिया (आर.पी.आई) के गठन की घोषणा की। उनके निधक के बाद महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश में उनके अनुयायियों ने आर.पी.आई. की स्थापना की।

12.3.2 औपनिवेशिक काल के बाद भारत में दलित आंदोलन

भारत के विभिन्न राज्यों में दलितों की पहचान संबंधित में सवाल उनकी राजनीतिक लामबंदी का केन्द्रिय बिन्दु हो गये है। उनकी लामबंदी की सीमा और पैटर्न असमान रहे हैं। आजादी के बाद के दौर दलित लामबंदी के सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण हैं : महाराष्ट्र तथा उत्तर प्रदेश में आर.पी.आई. एवं 1950–1970 के दशक में महाराष्ट्र में दलित पेंथर। 1980 के दशक में उत्तर–प्रदेश में बहुजन समाज पार्टी का उदय इसकी बाद में राज्य में भूमिका तथा 1990 के दशक में कुछ राज्यों में जैसे आंध्र–प्रदेश, बिहार, कर्नाटक में हिंसा के खिलाफ दलितों की लामबंदी ये कुछ उदाहरण हैं।

आर.पी.आई. और दलित पेंथर्स

1956 में अंबेडकर की मृत्यु के बाद उनसे प्रेरित लोगों ने 1957 में एक राजनीतिक पार्टी की स्थापना की जिसका नाम था रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया (आर.पी.आई.)। आर.पी.आई. का गठन ए.आई.एस.सी.एफ. के भंग होने के बाद किया गया था, जो पहले अंबेडकर द्वारा स्थापित किया गया थी। आर.पी.आई. का महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश में दलित एवं वंचित जातियों में मजबूत आधार था। इसने जाति–आधारित अन्याय से लड़ने और भूमि सुधारों को लागू कराने की वकालत की। इसके नेता एवं कार्यकर्त्ता वंचित समुदाय के पहली पीढ़ी के शिक्षित लोग थे। यू.पी. में आर.पी.आई. ने विपक्षी दलों के साथ तालमेल करके मूल्य वृद्धि के खिलाफ, खाद्यान की कमी, एवं अन्य समस्याओं के खिलाफ लोगों को लामबंद किया। आर.पी.आई. उत्तर प्रदेश में खासकर पश्चिम उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों में 1950–1960 दशकों में एक मजबूत पार्टी के रूप में उभरी। तथापि बाद में आर.पी.आई. 1970 के दशक में गायब हो गई। इसका प्रमुख कारण इनके मुख्य नेता बी.पी. मौर्य का उत्तर प्रदेश में कांग्रेस पार्टी में शामिल होना था।

महाराष्ट्र में, पहली पीढ़ी जो शिक्षित थी और दलित युवाओं को आकर्षित कर रही थी, वह दलित नेतृत्व खासकर कांग्रेस एवं रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया से काफी असंतुष्ट थी। महाराष्ट्र में दलितों के अंदर सांस्कृतिक आंदोलन की शुरुआत हो गई थी। और इस आंदोलन की शुरुआत एक साहित्यिक पत्रिका अस्मितादर्श नाम की पत्रिका के प्रकाशन के साथ हुई थी। इस पत्रिका में रेडिकल गीत, जाति आधारित शोषण की कहानियाँ तथा अन्य आत्मकथाऐं प्रकाशित होते थे। यह पत्रिका साहित्यक मंडिलयों में लामबंदी का एक महत्वपूर्ण माध्यम बन गई थी। ये सारे लेख एवं कहानियां डॉ. अंबेडकर के जीवन एवं विचारों से प्रेरित थे। बाबूराव बगुल और गंगाघर पंतवाने जैसे प्रसिद्ध मराठी लेखक के आंदोलन में काफी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। कुछ युवा कवियों जैसे नामदेह धसाल, राजा ढाले, जे.वी. पवार, अर्जुन डांगले, अरूण कांबले इत्यादि ने डॉ. अंबेडकर से प्रेरणा लेकर और अमेरिका के ब्लैक पेंथर फॉर सेल्फ डिफेंस से प्रेरित होकर 1972 में दलित पेंथर का गठन किया था। हालांकि यह पार्टी बहुत कम समय तक ही अस्तितित्व में थी। लेकिन इसने दलित आंदोलन को नई दिशा प्रदान की। दलित पेंथर को अंबेडकर के बाद के समय दलित आंदोलन का सबसे अधिक मुखर संगठन कहा जा सकता है। आर.पी.आई. एवं दलित पेंथर दोनों की कुछ कमियां थी। 1970 दशक के मध्य तक अंबेडकरवादी समूहों के बीच विभेद और गुटबाजी देखने को मिली। इस कारण दतिल आंदोलन में विशेष रूप से महाराष्ट्र में रिक्त स्थान देखने को मिला। जैसा कि ऊपर वर्णिन है, यू.पी. में आर.पी. आई. नेतृत्व को कांग्रेस में आना भी दलित आंदोलन के कमजोर होने का कारण बना।

बामसेफ, डी.एस. 4 और बसपा

हालांकि आर.पी.आई. और दलित पेंथर्स जैसे दलितों के राजनीतिक और सांस्कृतिक संगठन में, 1970 के दशक मध्य तक गिरावट आई, लेकिन दलितों में सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया जारी रही। यह प्रक्रिया डॉ. बी. आर. अंबेडकर के जीवन और विचारों से प्रभावित हुई। और इसे इसकी व्याख्या अंबेडकरीकरण की अवधारणा द्वारा की जा सकती है (सिंह, 1998)। बड़ी संख्या में दलित कार्यकर्त्ताओं और बुद्धिजीवियों ने डॉ. अंबेडकर के जीवन और विचारों के विषय में दलित वर्ग को शिक्षित करने का निरंतर प्रयास किया। उन्हें सामाजिक रूप से दलितों के नेतृत्व

वाली पार्टी बनाने की जरूरत थी जिसका मुख्य एजेन्टा सामाजिक न्याय और सामाजिक परिवर्तन था। 14 अप्रैल 1984 कांशीराम द्वारा बहुजन समाज पार्टी का गठन किया गया था जो कि दलितों में सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन का राजनीतिक परिणति थी।

बसपा के संस्थापक कांशीराम, पंजाब में पैदा हुए थे, लेकिन उन्होंने अपनी राजनीतिक गतिविधि महाराष्ट्र से शुरू की। सबसे पहले उन्होंने बामसेफ (बैकवार्ड एंड मानोरिटी कम्युनिटी एम्थजलोयी फेडरेशन) की स्थापना की थी बामसेफ ने केंद्रिय सरकार के पिछड़ों और अल्पसंख्यक समाज के कर्मचारियों को लामबंद किया। बाद में, इसे डी. एस. 4 (दलित शोषित, समाज संघर्ष समिति) में परिवर्तित किया गया। और अंत में 1984 में कांशीराम ने एक राजनीतिक पार्टी बी.एस.पी. की स्थापना की इसका मूल उद्देश्य बहुजन समाज को लामबंद करके चुनावी प्रक्रिया के द्वारा सत्ता हासिल करना था।

बी.एस.पी. की परिभाषा के अनुसार बहुजन समाज के बहुसंख्य समुदायों दलितों – ओ. बी.सी., धार्मिक अल्पसंख्यकों से मिलकर बना है तथा इसमें उच्च जातियों खासकर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को बाहर रखा गया है। 1985 में चुनावी राजनीति में प्रवेश करने के बाद से, 1990 के दशक और 2010 के दशक के शुरू के वर्षों तक बी.एस.पी. उत्तर प्रदेश में सबसे अधिक प्रभावशाली दलों में से एक थी। बी.एस.पी. ने पहले समाजवादी पार्टी के साथ मिलकर उत्तर प्रदेश में गठबंधन सरकार बनाई थी। उसके बाद बी.एस.पी. की नेता मायावती बी.जे.पी. के समर्थन से उत्तर प्रदेश की चार बार मुख्यमंत्री बनी। विभिन्न बसपा सरकारों ने दलितों के लिए कल्याणकारी योजनाऐं चलाई, खासकर अंबेडकर गाँवों में। इसने सामाजिक न्याय के पक्षघर दलितों के महापुरूषों की यादगार में स्मारक बनवाये। यद्यपि दलितों की भागेदारी चुनावी राजनीति में बढ़ी है, लेकिन इसमें एकरूपता नहीं रही। लेकिन दलित लामबंदी के कुछ उदाहरण हैं जहाँ पर सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहचान, मानव अधिकारों की रक्षा पर ज्यादा ध्यान दिया गया।

अभ्यास प्रश्न 1

नोटः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर की जाँच इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) स्वतंत्रता पूर्व के काल में दलित आंदोलन की विशेषताओं की चर्चा कीजिये।

.....

.....

.....

.....

2) बामसेफ, डी.एस. 4 तथा बी.एस.पी. में क्या अंतर है।

.....

.....

.....

.....

12.4 ओ.बी.सी. कौन हैं?

आपने पिछले भाग में दलित और अनुसूचित जाति अवधारणाओं के बारे में पढ़ा होगा। इनका प्रयोग एक दूसरे के स्थान पर किया जाता है। अनुसूचित जातियों में वे जातियाँ आती हैं जिन्होंने अस्पृश्यता का अनुभव किया है तथा अपने जीवन के विभिन्न पहलुओं में वंचित है। अनुसूचित जातियाँ के अलावा भी पिछड़े वर्ग हैं जिन्हें हम अन्य पिछड़ी जातियां सामाजिक और शैक्षिक तौर पर पिछड़े हैं, (ओबीसी) कहते हैं। अति पिछड़े वर्गों के साथ छूआछूत नहीं होता है। लेकिन (अनुच्छेद 15 (4), 16 (4) के अनुसार इनका सरकारी संस्थाओं के पदों में प्रयाप्त प्रतिनिधित्व नहीं होता, ओ.बी.सी. ऐसा समूह है जिसमें कई प्रकार की जातियां शामिल है, जिन्हें सामाजिक तौर वर्गीकृत किया जा सकता है और वो परंपरागत तौर पर जाति आधारित व्यवसाय करते हैं। सामाजिक स्तरीकरण के आधार पर ओ.बी.सी. वर्ग में वे जातियां आती जिनका स्थान सामाजिक अनुक्रम में मध्य में होता है। इस प्रकार ओ.बी.सी. वर्ग विभिन्न जातियों का प्रतिनिधित्व करता हैं।

जजमानी व्यवस्था के अनुसार, सबसे ऊपर उच्च जातियों को रखा गया और उसके नीचे उन जातियों को रखा गया जो सेवाऐं प्रदान करती है। मध्य वर्गीय जातियों का परंपरागत व्यवसाय कृषि से संबंधित है, जबकि उनसे नीचे की जातियों का कार्य सेवाऐं देना था। जैसाकि आप इस खंड में पढ़ेंगे, ओ.बी.सी. समूह की जातियों दो प्रकार की या उच्च जातियां में विभाजित किया जा सकता है– भू–स्वामी ओ.बी.सी. और अति–पिछड़ा वर्ग (एमबीसी या ई.बी.सी.) है। कुछ राज्यों में, सामाजिक और शैक्षिक पिछड़े वर्गों की माँग है कि उन्हें अति पिछड़ें वर्गों (एम.बी.सी.) की पहचान मिलानी चाहिये। हालांकि कुछ राज्यों में उन्हें अति पिछड़ वर्गों (एम.बी.सी.) का दर्जा भी दिया जा चुका है, ऐसी ही माँग अन्य राज्यों में भी उठने लगी है।

इस प्रकार, व्यवसाय और सामाजिक स्थिति के अनुसार, जो जातियाँ ओ.बी.सी. में शामिल है, वे कृषक या मध्य–वर्ग जातियां की और कई अन्य जातियाँ हैं जो सामाजिक स्तर पर उनकी तुलना में निम्न श्रेणियों में आती है। तुलनात्मक रूप से निम्न जातियाँ परंपरागत व्यवसायों से संबंधित हैं, जिन्हें जजमानी व्यवस्था द्वारा परिभाषित किया गया है। इनमें नाई, बढ़ई, कुम्हार पानी खींचने वाले, इत्यादि जातियां शामिल हैं। उनकी जातियों के नाम और उनकी संख्या अलग–अलग राज्यों में अलग–अलग होती है। यहाँ पर यह बताना जरूरी है कि तुलनात्मक रूप से निम्न जातियों को अलग–अलग राज्यों में ओ.बी.सी. की श्रेणी में रखा गया है, जबकि सभी मध्य–वर्ग तथा कृषक जातियों को केन्द्रिय ओ.बी.सी. सूची में भी रखा गया है।

मध्य वर्ग की जातियां जिनके प्राप्त जमीन हैं या कृषक जातियाँ हैं। यादव, गुर्जर, कोरी, कुर्मी, जाट उत्तर भारत के राज्यों में जैसे – दिल्ली, यू.पी., बिहार और राजस्थान में, वोकालिग्गा और लिंगायात कर्नाटक दक्षिण भारत में कुछ ऐसे उदाहरण है जिन्हें ओ.बी.सी. श्रेणी में रखा गया है। कुछ ऐसे जाति समूह जैसे कि आंध्र प्रदेश में काप्पू, गुजरात में पटेल तथा महाराष्ट्र में मराठा भी माँग कर रहे हैं कि उन्हें भी ओ.बी.सी. में शामिल किया जाये।

वे विभिन्न जातिया जो ओ.बी.सी. में आती है, राज्य की नीतियों और उनके अपने बदलाव से द्वारा प्रभावित हुई। 1950 के दशक से मध्यम–वर्ग की जातियों या ओ.बी.सी. को भूमि सुधार उनके अपने का लाभ मिला। भूमि सुधारों ने जमीदारी व्यवस्थ

समाप्त कर किसानों और राज्य के बीच बिचौलियों को खत्म कर किसानों को जमीन का मालिक बना दिया। यद्यपि सभी राज्यों में भूमि सुधार का उन पर एक समान प्रभाव नहीं था, लेकिन अलग–अलग राज्यों में भूमि–स्वामी या मध्यम जातियों के वर्ग को भूमि–सुधार से लाभ मिला है। कुछ अन्य राज्यों में, ये जातियाँ भी हरित क्रांति की लाभार्थी रही है।

1970 तक, मध्यम–वर्गीय कृषक जातियाँ काफी सशक्त एवं राजनीतिक तौर पर मुखाविर वर्ग के रूप में उभर कर सामने आई। इन्हें शैक्षिक और राजनीतिक परिचर्चा में कई नामों से जाने जाता है – मध्यम–वर्ग कृषक, अमीर किसान, कुलक या बुलक कैपिटलिस्ट इत्यादि। जैसा कि ओ.बी.सी. वर्ग सामान्यता मध्यम या निम्न जातियों और वर्गों से संबंध रखती है, इन्हें राम मनोहर लोहिया से प्रेरित समाजवादियों ने लाभबंद किया था। समाजवादियों का प्रमुख उद्देश्य ओ.बी.सी. वर्ग को सशक्त करना था और इसका एक प्रमुख तरीका था उन्हें लोक संस्थाओं में आरक्षण के माध्यम से प्रतिनिधित्व देना। समाजवादियों के साथ, किसान नेता चौधरी चरण सिंह ने भी पिछड़े वर्गों के लिये आरक्षण की वकालत की थी, जिनमें ज्यादातर खेतिहर थे।

ओ.बी.सी. वर्गों के मुद्दें

ओ.बी.सी. वर्गों के मुख्य मुद्दों में नये जाति समूहों को ओ.बी.सी. में शामिल करने की माँग से संबंधित है। इन मांगों में अति पिछड़ा वर्ग एमबीसी/ई.बी.सी. द्वारा ओ.बी.सी. कोटे में विभाजन की माँग, कुछ पिछड़ी जातियों द्वारा उनको एस.सी., एस.टी. समुदाय में शामिल करना; कुछ जातियों के सांस्कृतिक प्रतीकों की पहचान की माँग या उनसे संबंधित महापुरूषों को ''भारत रत्न'' देने की माँग करना या उनके नाम पर छुट्टी घोषित करना इत्याद शामिल है (सिंह, 2021)। इनमें कुछ माँगों के उदाहरण इस प्रकार हैं : महाराष्ट्र में मराठाओं, गुजरात में पटेलों, राजस्थान (1999 तक जब उन्हें राज्य में ओबीसी सूची में शामिल कर लिया गया) व हरियाणा के जाटों, आंध्रप्रदेश के काप्पू, जाति द्वारा अपने–अपने राज्यों में ओ.बी.सी. सूची में डालने की माँग। राजस्थान में गुर्जर एस.टी. में शामिल करने की माँग कर रहे हैं। विशेषकर उत्तर प्रदेश में अति पिछड़ा वर्ग के लोग ओ.बी.सी. कोटे को ''कर्पूरी ठाकुर फार्मूला'' के तहत् बाँटने की माँग करते हैं। ''कर्पूरी ठाकुर फार्मूला'' बिहार के कर्पूरी ठाकुर के मुख्यमंत्री (1977–1979) के नाम से जाना जाता है। इस फार्मुले के तहत् ओ.बी.सी. कोटे का अतिपिछड़े वर्गों (ई.बी.सी.) तथा प्रभावशाली ओ.बी.सी. वर्गों में विभाजित किया गया।

सरकार ने इन माँगों पर अलग–अलग तरह से प्रतिक्रिया की है। कुछ राज्यों की प्रतिक्रिया के कुछ उदाहरण इस प्रकार है :– राजस्थान में 1999 में (धोलपुर और भरतपुर को छोड़कर) और 2000 में दिल्ली और यू.पी. में भी राज्यों की ओ.बी.सी. सूची में जाटों को शामिल किया गया। 2014 में महाराष्ट्र में सरकार ने मराठा समुदाय को ओ.बी.सी. का स्टेटस दिया लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने (2021 में) इस पर रोक लगा दी थी। उत्तर प्रदेश में ओ.बी.सी. कोटे में विभाजन के सवाल पर, राज्य में कांग्रेस सरकार ने 1975 में छेदी लाल साथी आयोग का गठन किया था, और 2001 में राजनाथ सिंह की भा.ज.पा. सरकार ने हुकुम सिंह समिति का गठन किया था। उत्तर प्रदेश में, विभिन्न सरकारों ने चाहे मायावती की, मुलायम सिंह यादव की, या योगी आदित्यनाथ की सरकारों ने कुछ पिछड़ी जातियों को अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों में शामिल करने का प्रयत्न किया। परंतु कानूनी या राजनीतिक कारणों से कई एम.बी.सी. जातियों को अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों सूचियों में

शामिल नहीं किया जा सका। जहां पर इस राज्य में पाँच अन्य जातियों को विशेष पिछड़े वर्ग का दर्जा दिया गया था। इसके अंतर्गत ओ.बी.सी. केटेगिरी के अंतर्गत एक विशेष प्रतिशत कोटा आंवटित किया था। तमिलनाडु में, कुछ जातियों को अति–पिछड़े वर्ग को दर्जा दिया गया।

मंडल आयोग की रिपोर्ट

यह ध्यान देने योग्य है कि दक्षिण भारत में ओ.बी.सी. की लामबंदी उत्तर भारत से बहुत पहले हो चुकी थी। विभिन्न समय में और विभिन्न राज्यों में यद्यपि जनसंस्थाओं में ओ.बी.सी. आरक्षण बहुत पहले 1970 के दशक तक में लागू भी हो गया था, लेकिन अखिल भारतीय स्तर पर इसे 1990 में वी. पी. सिंह सरकार ने मंडल आयोग की रिपोर्ट को लागू करके किया था। वास्तव में, मंडल आयोग की रिपोर्ट को इसके 1980 में जमा करने के बाद लगभग एक दशक बाद ही लागू किया गया था। मंडल आयोग का गठन जनता पार्टी ने (1977–1979) में किया जब मोरारजी देसाई प्रधानमंत्री थे। क्योंकि मोरारजी देसाई की सरकार में ओ.बी.सी. का प्रतिनिधित्व अधिक था, इसी कारण मंडल आयोग का गठन किया गया था। वास्तविक अर्थ में, मंडल आयोग की रिपोर्ट ने ही पहली बार अखिल भारतीय स्तर पर ओ.बी.सी. को आरक्षण देने की सिफारिश की थी।

1950 में भारतीय संविधान के लागू होने के बाद, अनुच्छेद 340 के अंतर्गत राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वे सामाजिक एवं शैक्षिक पिछड़े वर्गों की पहचान करने के लिये, एक आयोग का गठन करें। 1951 में संविधान के प्रथम संशोधन के बाद, अनुच्छेद 15 (4) के अंतर्गत यह प्रावधान किया गया कि पिछड़े वर्गों के कल्याण के लिये भी कुछ कदम उठाये जायें, जैसे अनुसूचि जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए उठाए गये हैं। 1953 में काका कालेकर जो एक गांधावादी कांग्रेस पार्टी के थे की अध्यक्षता में प्रथम पिछड़ा आयोग का गठन किया गया था, कालेकर आयोग ने अपनी रिपोर्ट 1955 में प्रस्तुत की और भारत में इसने 3000 से अधिक सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े समुदायों की पहचान की थी। लेकिन, केन्द्र सरकार ने कालेकर आयोग की सिफारिशों को मंजूर नहीं किया। इसका नामंजूर करने का प्रमुख कारण था कि इसने सामाजिक एक शैक्षिक पिछड़े वर्गों की पहचान करने के लिये सही तरीका नहीं अपनाया।

बी. पी. मंडल की अध्यक्षता में दूसरा पिछड़ा वर्ग आयोग स्थापित किया गया। इसने लगभग 4000 पिछड़ी जातियों तथा वर्गों की पहचान की और अन्य पिछड़े वर्गों (ओबीसी) को अखिल भारतीय स्तर पर 27 प्रतिशत आरक्षण देने की सिफारिश की थी। लेकिन मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई। सर्वोच्च न्यायालय ने इंदिरा साहनी बनाम भारत संघ में यह निर्णय दिया कि ओ.बी.सी. आरक्षण में ''क्रीमी लेयर'' को आरक्षण के लाभ से बाहर रखकर, आरक्षण लागू किया सकता है। 'क्रीमी लेयर' का अर्थ है ओ.बी.सी. में शामिल उन व्यक्तियों से है जिनकी वार्षिक आय राज्य सरकार द्वारा निर्धारित आय से अधिक हो। इस आय में समय–समय पर बदलाव किया जाता है। 2005 में, 93वें संशोधन अधिनियम के अंतर्गत एक अलग खंड अनुच्छेद 15 में जोड़ा गया था। इस अनुच्छेद 15 (5) के अंतर्गत यू.पी.ए. (I) सरकार जो मनमोहन सिंह के नेतृत्व में थी, ने ओ.बी.सी. वर्गों के लिए उच्च शिक्षा संस्थानों में आरक्षण का प्रावधान किया गया था। इसे हम सामान्यतः मंडल (II) के नाम से जाना जाता हैं।

12.5 महिलाएँ

दोनों समुदाय दलितों एवं ओ.बी.सी. जिनकी ऊपर चर्चा की गई है, इनका संबंध विशेषकर भारत से है, लेकिन महिलाऐं एक ऐसे समुदाय से संबंधित हैं जो पूरे विश्व में सार्वभौम समुदाय हैं। भारत में वंचित वर्ग से संबंध रखने वाली महिलाऐं कई प्रकार के भेदभाव को सहन करती है, जैसे कि पिता की संपत्ति में अधिकार से वंचित रहना, लिंग–आधारित असमानता, नौकरी के चयन में समानता या स्वतंत्रता की कमी, शादी का निर्णय या जीवन जीने की स्वतंत्रता कमी तथा राजनीतिक संस्थानों में प्रतिनिधित्व की कमी। यद्यपि भारत में महिलाओं की स्थिति में काफी परिवर्तन आया है, विशेषकर, शिक्षा प्राप्त करने में सुधार, रोजगार प्राप्त करना, स्थानीय निकायों में राजनीतिक प्रतिनिधित्व, खासकर 73वें और 74वें संविधान संशोधन के बाद, लेकिन महिलाऐं अभी भी समाज का एक शोषित एवं वंचित वर्ग है।

भारत में महिलाओं के अधिकारों से संबंधित मुद्दे शैक्षिक एवं राजनीतिक बहस या प्रमुख बिंदु बन गए हैं। कई नेता एवं संगठन महिलाओं के मुद्दों को उठाने में शामिल हैं। महिलाओं की समस्याओं को हल करने का प्रयास स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व ही शुरू हो चुका था। समाज सुधारकों ने महिला विरोधी सामाजिक बुराइयों एवं कुरीतियों का विरोध किया। 19वीं सदी में समाज सुधारकों ने महिलाओं के मुद्दों की तरफ ध्यान दिया था। इन मुद्दों में सती प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह पर रोक इत्यादि, शामिल थे। पुरूषों के अलावा कई महिलाओं ने सामाजिक बुराइयों के खिलाफ लड़ने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। ऐसा समाज में पितृसत्तात्मक मूल्यों के प्रभुत्व के बावजूद हो पाया। इन महिला नेताओं में सावित्री बाई फूले, फातिमा शेख, पंडिता रमा बाई शामिल है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के काल में, कई नागरिक समाज संगठनों, आम जनता और व्यक्तियों ने महिलाओं के अधिकारों से संबंधित मुद्दों को उठाया।

1970 के दशक में महिलाओं के मुद्दों के प्रति चेतना में बढ़ोतरी देखी गई। इनमें ज्यादातर महिलाओं के मुद्दों पर चेतना में वृद्धि इस समय में समाज के विभिन्न वर्गों, जैसे कि दलित, पर्यावरर्ण कार्यकर्ताओं, ओ.बी.सी. महिलाओं या किसान के मुद्दों पर लामबंदी द्वारा जन्मी एक सामान्य चेनता का हिस्सा थी। इन मुद्दों पर जो आंदोलन हुए हम उन्हें नवीन सामाजिक आंदोलन के तौर पर जानते हैं। नवीन सामाजिक आंदोलनों की प्रमुख विशेषताऐं की पहचान उनकी राजनीतिक प्रकृति, नवीन मुद्दे तथा नये सामाजिक समूहों के उदय के द्वारा जानी जाती हैं। महिलाओं के मुद्दों में, उनका शोषण, संसद में उनके लिये आरक्षण और विधान सभाओं में आरक्षण, बलात्कार, खाप पंचायतों द्वारा दंडित किया जाना, सती प्रथा, बाल विवाह, घरेलू हिंसा इत्यादि शामिल है।

यहाँ पर कुछ महत्वपूर्ण उदाहरण हैं जो कि महिलाओं की लामबंदी एवं उनकी भागेदारी से संबंधित हैं। महिलाओं ने उनके संगठनों के साथ तथा अन्य सामाजिक समूहों के साथ पर्यावरण आंदोलनों जैसे कि चिपको आंदोलन, शराब बंदी आंदोलन तथा मूल्य वृद्धि के खिलाफ आंदोलनों में भाग लिया था। इन आंदोलनों ने पितृ–सत्तात्मक आधारित असमानता को भी चुनौती दी थी। राधा कुमार के अनुसार, स्वतंत्रता की इच्छा तथा जेंडर–आधारित भेदभाव में द्वंद तथा जेंडर–आधारित उत्सव भारत में नारीवादी (फेमिनिस्ट) आंदोलन की विशेषताएं हैं। 2012 में दिल्ली में एक

छात्रा के साथ हुए बलात्कार की घटना के बाद जबरदस्त आंदोलन हुआ था जिसे हम निर्भया (असली नहीं) के नाम से जानते हैं। निर्भया केस के बाद देश में हुए महिलाओं के खिलाफ हो रहे अपराधों को रोकने में कुछ उपायों के बारे में सलाह के लिए आंदोलनों को देखते हुए न्यायमूर्ति वर्मा समिति का गठन किया गया। न्यायमूर्ति वर्मा समिति ने अपराधों की रोकथाम करने के लिये दस सिफारिशों की घोषणा की। इनमें से कुछ सिफारिशें इस प्रकार हैं – महिलाओं की तरफ गंदी नजरों से देखने, पीछा करने, अवांछित स्पर्श को अपराध मानना, नाबालिग लड़की का बलात्कार करने पर 10 वर्ष की सजा का प्रावधान, सामूहिक बलात्कार की सजा 20 वर्ष की कैद, तथा शादी संबंधों में बलात्कार भी एक अपराध की श्रेणी में रखना। 1987 में राजस्थान के एक गाँव में एक महिला ने अपने पति के अंतिम संस्कार की चिता पर सती प्रथा के अनुसार अपनी जान दे दी थी। इसके विरुद्ध राजस्थान में विभिन्न महिला संगठनों और अन्य नागरिकों संगठनों द्वारा बड़े पैमाने पर विरोध प्रदर्शन किया गया। विरोध के परिणामस्वरूप राजस्थान उच्च न्यायालय ने राजस्थान सरकार को 1987 के सती अधिनियम का पालन करने का निर्देश दिया और वार्षिक सती मेला को रोकने का आदेश भी दिया (माथुर, 2004)। भारत में महिला आंदोलनों की वजह से भारतीय संसद ने 2005 में घरेलू हिंसा को रोकने के लिए एक कानून बनाया। जिसमें महिलाओं को अपराधों अपने पति द्वारा प्रताड़ित होने पर तथा लिव–इन रिलेशन में अपने साथी द्वारा प्रताड़ित होने पर से न्याय प्रदान करने का प्रावधान किया गया।

कार्यस्थल पर महिलाओं के साथ यौन अत्याचार (रोकथाम) अधिनियम 2013 में पारित किया गया था जिसका उद्देश्य था कार्यस्थल पर महिलाओं की सुरक्षा को सुनिश्चित करना। 73वें और 74वें संविधान संशोधन ने पहले ही महिलाओं को एक तिहाई सीटें पंचायतों और नगरपालिकाओं में आरक्षित करने का प्रावधान किया गया है। इन प्रावधानों के परिणामस्वरूप महिलाओं के अंदर आत्म विश्वास और उनका राजनीतिक सशक्तिकरण हुआ है। लेकिन, महिलाओं के सशक्तिकरण की कुछ सीमाऐं भी है, विशेषकर स्थानीय निकायों में, ग्राम पंचायतों के अंदर। ज्यादातर मामलों में यद्यपि स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिये सीटें आरक्षित की गई है लेकिन उनके स्थान पर वास्तव में पुरूष ही निर्णय लेते हैं। चुनी हुई महिलाऐं एक प्रकार से उनकी परोक्ष प्रतिनिधि बनकर रह जाती हैं।

एक अन्य कदम महिलाओं को आरक्षण प्रदान करने के लिये उठाया गया। वह था 1996 में एच.डी. देवगौड़ा के नेतृत्व में संयुक्त मोर्चे की सरकार द्वारा संसद में महिला आरक्षण विधेयक प्रस्तुत करना। इस विधेयक का प्रमुख उद्देश्य महिलाओं के लिए संसद एवं राज्य विधान सभाओं में एक तिहाई सीटें आरक्षित करना था। इस विधेयक को कई बार संसद में प्रस्तुत करने के बावजूद भी अभी यह कानून नहीं बन पाया है। 2010 में इस विधेयक को राज्य सभा द्वारा पास किया गया, लेकिन लोकसभा में यह पारित नहीं हो पाया। कुछ राजनीतिक दलों ने इस विधेयक को पारित करने का भारी विरोध किया था। उनका तर्क था कि इससे कमजोर वर्गों के लिए सामाजिक न्याय प्रभावित होगा। उनकी यह माँग थी कि इसके अंदर भी एक निर्धारित कोटा होना चाहिए, खासकर समाज के कमजोर वर्गों आदिवासी, दलित, ओ.बी.सी. इत्यादि की महिलाओं के लिए। हालांकि एस.सी. एवं एस.टी. समुदायों की महिलाओं के लिए विधायी निकायों में आरक्षण दिया गया है, इसका आशय यह है कि इन समुदायों की महिलाओं के लिए आरक्षण इस आधार पर दिया गया है कि वे इन समुदायों से हैं, न कि इस आधार पर कि वे महिलाएं हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

नोटः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर की जाँच इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) ओ.बी.सी. कौन है तथा उनकी संरचना क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) मंडल आयोग का महत्व क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) महिलाओं से संबंधित मुद्दों की पहचान कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

12.6 संदर्भ

आहुजा, अमित, 2019 – *मोबिलाइजिंग द् मारजिनेलाइज्डः एथिनीक पार्टिज विदाउट एस्थनिक मूवमेंट्स*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली।

बर्ग, डाग – एरिक, 2020 – *डायनेमिक ऑफ कास्ट एण्ड लॉ, दलितस ओप्रेशन एण्ड कंस्टीट्यूशनल डेमोक्रेजी इन इंडिया*, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू–दिल्ली।

चक्रवर्ती, उमा, 2006– *जेन्डरिंग कास्ट, थ्रू ए फेमिनिस्ट लेंस*, स्त्री/साम्या, कलकत्ता।

जैफरलो क्रिस्टोफ, 2003 – *इंडियाजं साइलेंट रिकेल्यूशनः द् राइज ऑफ द् लो कास्ट इन नोर्थ इंडिया* परमानेंट ब्लैक।

कुमार, अरविन्द, 2018 – ''रिमेंबरिंग बी.पी. मन्डल, द मैन बिहाइन्ड इंडियाज साइलेंट रिवोल्यूशन'', *द वायर* 25, अगस्त।

कुमार, अरविन्द, 2018–''हाऊ डू आई रिफ्रेन फ्रोम यूजिंग दलित'', *द वायर*, 5 नवंबर।

कुमार, अरविन्द, 2021 – 'द नेशन एण्ड द् शूद्रा' इन कांचा इलैफ शेफर्ड एम कार्तिक राज्य कुरूपुसामी एडिटेड, *द शूद्रा : विजन फोर एक न्यू पाथ*, पेंगविन रेंडम हाउस, इंडिया, न्यू–दिल्ली।

कुमार, राधा, 2002 – *द् हिस्ट्री ऑफ डूईंगः एम इलस्ट्रेटिड अकाउन्ट ऑफ मूवमेंट्स फोर वूमेंस राइट्स एण्ड फेमिलिज इन इंडिया, 1800–1990*, काली फोर वूमेन, न्यू–दिल्ली।

माथुर, कंचन, 2004 – *काउन्टरिंग जेंडर वायलेंस टूवार्डस कलैक्टिव एक्शन इन राजस्थान*, सेज प्रकाशन, नई दिल्ली।

मेनन, निवेदिता, 1999 – *जेंडर एण्ड पोलिटिक्स इन इंडिया*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू–दिल्ली।

रेगे, शर्मिला, 2006 – *राइटिंग/कास्ट, राइटिंग जेंडरः नरेटिंग दलित वूमेस रेस्टीमोनीज*, जुबान इंडिया, न्यू–दिल्ली।

शाह, घनस्याम, 2001 – *दलित आइडेंटिंडी एण्ड पोलिटिक्स*, सेज प्रकाशन।

सिंह, जगपाल, 2021 – *कास्ट, स्टेट एण्ड सोसाइटीः डिग्री ऑफ डेमोक्रेसी इन नोर्थ इन्डिया*, राउटलेज, लंदन, न्यूयार्क।

सिंह, जगपाल, 1998 – ''अंबेडकेराइजेशन एण्ड असर्सन ऑफ दलित आइडेंटिडीजः सोसियो–कल्चरल प्रोटेस्ट इन मेरठ डिस्ट्रिक्ट ऑफ वेस्टर्न उत्तर प्रदेश'', *ई.पी.डब्ल्यू*, पेज 2611–18।

12.7 सारांश

दलित, ओ.बी.सी. और महिलाऐं समाज के कमजोर वर्गों से संबंधित हैं। वे राजनीतिक रूप से जागरूक वर्ग हैं। दलित और ओ.बी.सी. जाति–विशेष श्रेणी हैं जबकि महिलाऐं सभी जातियों, धर्म एवं अन्य वर्गों से संबंधित सार्वभौमिक समूह है। दलित ओ.बी.सी. और महिलाओं के कुछ मुद्दे तो प्रत्येक वर्ग के विशेष मुद्दें होते हैं और इनके कुछ सामान्य मुद्दे होते हैं। ये सामान्य मुद्दे हैं : समानता, स्वतंत्रता, सामाजिक भेदभाव, आत्म–सम्मान, और सामाजिक न्याय से संबंधित है। विशेष मुद्दे इस प्रकार है, दलित और ओ.बी.सी. के जाति आधारित असमानता के मुद्दे हैं तथा महिलाओं के मुद्दों में ज्यादातर जेन्डर भेदभाव या पितृ–सत्तात्मक आधारित असमानता के मुद्दे शामिल हैं। विशेषकर ये मुद्दे महिलाओं के साथ भेदभाव और हिंसा तथा कर्म स्थल पर यौन उत्पीड़न, बलात्कार, तथा अधिकारों से संबंधित है। सभी तीनों समूहों में राजनीतिक चेतना बढ़ी है, तथा उनकी लामबंदी एवं राजनीतिक दलों में भी सक्रियता बढ़ी है। इसने उनके सशक्तिकरण को मजबूत किया है। हालांकि जाति और जेन्डर आधारित भेदभाव अभी भी जारी है, फिर भी उनको सशक्त बनाने का लगातार प्रयास जारी है।

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1) स्वतंत्रता पूर्व काल में दलित आंदोलन का मुख्य उद्देश्य जाति आधारित भेदभाव को समाप्त करना, दलितों को आत्म सम्मान तथा प्रतिष्ठा प्रदान करना, और अन्य वंचित वर्गों को आत्म सम्मान देना प्रमुख था। दलित आंदोलन की अगुवाई

समाज सुधारकों ने की जिसमें महिलाऐं भी शामिल थीं, जिनका उद्देश्य था दलितों एवं वंचित वर्गों के मुद्दों की पहचान करना।

2) बामसेफ (बैकवार्ड एण्ड माइनोरिटी कम्युनिटी एम्पोत्माइज फेडरेशन) एक कर्मचारियों का संगठन था जिसमें एस.सी., एस.टी. तथा ओ.बी.सी. एवं अल्पसंख्यक समुदाय के कर्मचारी शामिल थे। जबकि डी.एस. 4 (दलित शोषित संघर्ष समिति) का क्षेत्र सभी वर्गों को शामिल करना था जिसमें सरकारी कर्मचारी वर्ग भी शामिल थे। बी.एस.पी. (बहुजन समाज पार्टी) का उद्देश्य बहुजन समाज जो कि बहुसंख्यक समाज को मजबूत बनाना है। जिसमें उच्च जातियाँ शामिल नहीं है और चुनावी प्रक्रिया के माध्यम से सरकार बनाना भी इसका प्रमुख लक्ष्य है।

अभ्यास प्रश्न 2

1) ओ.बी.सी. वे जातियाँ है, जो सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़ी हुई हैं। ये कई प्रकार की जातियाँ है जिनमें सामाजिक तौर पर मध्यम–स्तर की जातियाँ परंपरागत जिनका व्यवसाय कृषि रहा है तथा वे जातियाँ जो जजमानी व्यवस्था जुड़ी हुई शामिल हैं।

2) मंडल आयोग पहला आयोग था जिसने ओ.बी.सी. वर्गों के लिए अखिल भारतीय स्तर पर सरकारी नौकरियों में खासकर केन्द्र की नौकरियों में आरक्षण देने की सिफारिश की थी।

3) महिलाओं के प्रमुख मुद्दे पित्रसत्तात्मक व्यवस्था से निकले हैं। ये मुद्दे सामान्यतः उनके उत्पीड़न निरादार सार्वजनिक स्थान, घर में, या दफ्तर में उनका उत्पीड़न हैं, इनमें पैत्रिक संपत्ति में उनका समान अधिकार, स्वतंत्रता, बलात्कार एवं उनके आत्म–सम्मान को ठेस पहुँचाने इत्यादि से संबंधित मुद्दे हैं।

इकाई 13 भाषाई और नृजातीय समूह*

संरचना

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 भाषाई एवं नृजातीय समूह क्या हैं?

13.3 भाषाई समूह

13.3.1 भारत में भाषाई समूह

13.3.2 त्री–भाषा–फार्मूला (सूत्र)

13.3.3 भाषाई समूह और राजनीति

13.4 नृजातीय समूह

13.4.1 भारत में नृजातीय समूह

13.4.2 नृजातीय समूह और राजनीति

13.5 सारांश

13.6 संदर्भ

13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य भारत में राज्यों की राजनीति में भाषाई एवं नृजातीय समूहों की जानकारी छात्रों को देना है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह समझ सकेंगे :–

- भाषाई और नृजातीय समूहों का अर्थ,
- इन दोनों के बीच अंतर को रेखांकित करना,
- भाषाई और नृजातीय समूहों की राजनीति की चर्चा करना।

13.1 प्रस्तावना

भाषाई और नृजातीय समूहों का लोकतंत्र में महत्वपूर्ण स्थान हैं। उनकी राजनीतिक प्रक्रियाओं में भागीदारी सशक्तिकरण, स्वतंत्रता, न्याय, सुरक्षा, समानता इत्यादि लोकतंत्र की सफलता का द्योतक है। भारत जैसे बहुसांस्कृतिक और विविध देश में विभिन्न कारकों जैसे जाति, भाषा, धर्म, नस्ल, संस्कृति, रीति–रिवाज परंपराओं ने लोकतंत्र में उनके स्थान को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। समाज और राजनीति में इन कारकों पर आधारित संघटन, संरक्षण और भेदभाव लोकतांत्रिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं।

* प्रो. जगपाल सिंह, राजनीति विज्ञान विभाग, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली – 110068
इस इकाई को इकाई 16, एम.पी.एस. की –008 तथा इकाई 009 एमपीएस की–007 से अनुकूलित किया गया है।

13.2 भाषाई और नृजाति समूह क्या हैं?

आगे बढ़ने से पहले आइए समझते हैं कि एक भाषाई और एक नृजातीय समूह का क्या अर्थ है। ये दोनों सामूहिक पहचान है। एक भाषाई समूह उन लोगों का एक समूह है जो यह महसूस करते हैं कि वे एक सामान्य भाषा, साझा करते हैं। इसी तरह नृजातीय समूह उन लोगों का समूह हैं जो यह सोचते हैं कि वे जीवन के कई पहलुओं जैसे धर्म, भाषा, संस्कृति, रीति–रिवाज, परंपराऐं, जाति, नस्ल, अर्थव्यवस्था इत्यादि में समानताऐं साझा करते हैं। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि भाषाई समूह एक मात्र कारक भाषा पर बना है जबकि नृजातीय समूह बहुकारकों के आधार पर बना है। यहाँ पर यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि कुछ विद्वान यह मानते हैं कि दोनों समूह कई कारकों या एक कारक पर आधारित हैं। आमतौर पर भारतीय संस्थानों में स्थित भारतीय विद्वान और अमेरिकी एवं यूरोपीय संस्थानों में स्थित विद्वान एकल और बहु कारकों के गठजोड़ से समूह की पहचान को थोड़ा अलग तरह से देखते हैं। भारतीय संस्थाओं में स्थित विद्वान किसी एक कारक पर आधारित समूह को एकल कारक समूह कहते हैं।

उदाहरण के लिये एकल भाषाई समूह तमिल, तेलगू और हिन्दी भाषा के आधार पर स्थित है। वहीं जाति का आधार पहचान है जैसे दलित, ओ.बी.सी., उच्च जाति, या ब्राह्मण या राजपूत एक कारक के रूप में जाति या जाति समूह के आधार पर गठित पहचान है। और वे नृजातीय समूहों को कई कारकों के आधार पर बनाये गये समूह मानते हैं। उदाहरण के लिये, नागा या मिजो समूह की पहचान कई कारकों के आधार पर बनाई गई है जैसे – संस्कृति, भाषा, रीति–रिवाज, इतिहास, भूगोल, इत्यादि जो नागा या मिजों की नृजातीय पहचान को निर्धारित करता है। इन विद्वानों से अलग, अमेरिकन एवं यूरोपीय विद्वान एकल या बहु कारकों में अंतर नहीं समझते हैं। उनके अनुसार, दोनों समूह एकल या बहु कारकों पर आधारित नृजातीय समूह ही हैं। आप इस इकाई में भाषाई समूह जो एकल कारक पर आधारित है तथा नृजातीय समूह जो बहु कारक पर आधारित है उनके बारे में पढेंगे।

13.3 भाषाई समूह

भाषाई समूहों को दो समूहों में बाँटा जा सकता है। राष्ट्रीय तथा राज्य या केन्द्र शासित समूह। अखिल भारतीय स्तर पर भाषाई समूह हिन्दी भाषी है जबकि अन्य भाषाई समूह भाषाई अल्पमत समूह है। लेकिन कई भाषाई समूह जो कि अखिल भारतीय स्तर पर अल्पमत में है, वे कई राज्यों में बहुमत में है। राज्यों में जो समूह बहुमत की भाषा नहीं बोलते हैं वे भाषाई अल्पमत में आते हैं। भारत के सभी राज्यों में एक से ज्यादा भाषाई समूह हैं।

13.3.1 भारत में भाषाई समूह

भारत में भाषा को कई भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। मातृ भाषा, बोली और सरकारी भाषा। मातृ भाषा वह है जो हम बचपन से सीखते हैं। बोली वह है जो किसी समुदाय द्वारा एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में प्रयोग की जाती है। आधिकारिक भाषा वह है जिसे आधिकारिक तौर पर मान्यता प्रदान है जिसे हम राजकाज या सरकारी काम काज एवं शैक्षणिक संस्थाओं में प्रयोग करते हैं। विभिन्न प्रांतों में विभिन्न

आधिकारिक भाषा है। भाषा के आधार पर जो समूह पहचाने जाते हैं उन्हें हम भाषाई समूह कहते हैं। जैसे – तेलगू, तमिल, पंजाबी, या कन्नड़ भाषी लोग। अखिल भारतीय स्तर पर हिन्दी सरकारी भाषा है। इसका मतलब यह है कि सभी सरकारी कार्यों में जो कि केन्द्र सरकार से संबंधित हो उनमें हिन्दी का ही प्रयोग किया जायेगा। इसी प्रकार, सभी राज्यों में अपनी–अपनी सरकारी भाषा का ही प्रयोग किया जायेगा। कुछ राज्यों में एक से अधिक सरकारी भाषा है। आशा सारंगी ने अपनी पुस्तक *''लेंग्वेज एण्ड पालिटिक्स इन इंडिया''* (2009) ने भाषा एवं राजनीति के बीच संबंधों की चर्चा की है। उन्होंने प्रकाश डाला कि भाषा वर्गीकरण का प्रथम सर्वे 1903 से 1923 के बीच औपनिवेशिक भारत में जार्ज ग्रिशन द्वारा किया गया था। सर्वे की रिपोर्ट 12 खंडों में प्रकाशित की गई हैं। इनका नाम *''लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया''* था। इस सर्वे ने भारत में 79 भाषा एवं 544 बोलियों की पहचान की थी। आशा सारंगी के अनुसार, ग्रिसन के सर्वे का उपयोग जनसंख्या आयुक्त ने भी किया था ताकि भाषाई सर्वे का डाटा प्राप्त किया जा सके। 1881 से भारत में मातृ भाषा में काफी अंतर देखा गया है। 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में करीब 1652 भाषाऐं थीं, जिन्हें 114 मातृ भाषाओं के समूह में बांटा गया था। 1951 की जनगणना के अंतर्गत, कई बोलियों को हिन्दी बोलियों में संदर्भित किया गया जैसे, मैथिली, भोजपुरी, मगधी। यहाँ, तक कि मैथिली को 1961 में एवं 1971 की जनगणना में हिन्दी में शामिल किया गया था। (आशा सारंगी, 2009, पेज 14–15)।

भारत में संविधान की अनुसूची आठ में सभी सरकारी भाषाओं को रखा गया है। अभी भारत में 22 भाषाऐं है जो कि आठवीं अनुसूची में रखा गया है। ये भाषाऐं इस प्रकार हैं :– असमी, बंगाली, बोडो, डोगरी, गुजराती, हिंदी, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, मलयालम, मराठी, मनीपुरी, मैथिली, नेपाली, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, संथाली, सिंधी, तमिल, तेलगू, और उर्दू। इन भाषाओं में हिन्दी की व्याकरण संस्कृत एवं अन्य भाषाओं से ली गयी है। भारत के कई समुदाय के लोग संविधान की आठवीं अनुसूची में अपनी भाषा को शामिल करने की माँग करते है। ये सब राजनीतिक कारकों पर निर्भर करता है। हमारे संविधान में अनुच्छेद 29–30 में भाषाई एवं सांस्कृतिक हितों की रक्षा या इनसे संबंधित समूहों की रक्षा का प्रावधान किया गया है।

13.3.2 त्रि–भाषा–फार्मूला (सूत्र)

जैसा कि हमें पता है भारत के सभी राज्यों में विभिन्न भाषाऐं हैं, मुख्य चुनौती यह हैं कि स्कूल के बच्चों का किस प्रकार से भाषाई विविधता के बीच आपसी मेलजोल बढ़ाया जाए। त्री–भाषा सूत्र के लागू होने को भारत के नीति–निर्माताओं ने एक अच्छी योजना माना था। त्रि–भाषा फार्मूला (सूत्र) के अनुसार सभी बच्चों को आठवीं तक तीन भाषाऐं सीखनी होगी। हिन्दी और अंग्रेजी के अलावा किसी एक आधुनिक भारतीय भाषा भी सीखनी होगी। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में आधुनिक भाषा मुख्य रूप से एक दक्षिण भारत में बोली जाने वाली भाषा होगी। दक्षिण भारतीय राज्यों में, जिन तीन भाषाओं को सिखाया जायेगा उनमें हिन्दी, अंग्रेजी के अलावा एक उनकी अपनी क्षेत्रीय भाषा होगी। चूंकि भाषा एक राज्य का विषय है, किन भाषाओं को त्रि–भाषा फार्मूला में शामिल किया जायेगा यह राज्य के अधिकर क्षेत्र में आता है।

तीन भाषाओं के फार्मूले को पहली बार पेश करने का सुझाव 1950 के केन्द्रिय शिक्षा बोर्ड (कैब) की बैठक में लिया गया था। राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964–66) जिसे हम कोठारी आयोग के नाम से जानते हैं, उनकी सिफारिशों के आधार पर, 1968 में इसे

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शामिल किया गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में यह सुझाव दिया गया कि पाँचवी तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा में होना चाहिए। जहां तक संभव हो निम्न में से एक हो :– मातृ भाषा, गृह भाषा, स्थानीय भाषा या क्षेत्रीय भाषा कक्षा 8 तक। त्रि–भाषा फार्मूले को अलग–अलग तरह से राज्यों, में लागू किया गया, किसी राज्य ने तीन तो किसी राज्य ने चार–भाषा फार्मूले को अपनाया।

13.3.3 भारत में भाषाई समूह और राजनीति

भारत में पहचान के आधार पर भाषा का महत्व बीसवीं सदी की शुरुआत में पहचाना गया। जब कांग्रेस ने भाषाई आधार पर खुद को संगठित किया था। लेकिन आजादी के बाद, काँग्रेस ने भाषाई आधार पर राज्यों को संगठित करने में अनिच्छा जताई जब तक कि राज्य पुनर्गठन आयोग ने राज्यों को भाषाई आधार पर संगठित करने की सिफारिश दी। यह आंध्र प्रदेश में एक गाँधीवादी पी. श्रीरामूलू की मौत के मद्देनजर हुआ था। 1953 में तब के मद्रास राज्य में से तेलगू राज्य के गठन के लिए उन्होंने अपनी भूख हड़ताल की थी। यह उनकी प्रमुख माँग थी। कई राज्यों में ऐसे वर्ग हैं जो ऐसी भाषा बोलते हैं जो राज्य में अधिकांश लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा से भिन्न है। उन्हें भाषाई अल्पसंख्यक कहा जाता है। 1956 में भाषाई आधार पर राज्यों का पुनर्गठन किया गया लेकिन इसने भी भाषा के सवाल को हल नहीं किया। इसने कई राज्यों में भाषा के आधार पर टकराव को बढ़ावा दिया। भारत में, कई अवसरों पर भाषा एक प्रमुख राजनीतिक मुद्दा बन गई है।

इस माँग ने कई राज्यों की राजनीति को भी प्रभावित किया है। इस तरह की राजनीति या भाषाई राजनीति इन कारकों द्वारा प्रभावित होती है :– भाषाई अल्पसंख्यकों की स्वयं एवं भाषाई बहुसंख्यकों की समझ, भाषाई बहुसंख्यकों की भाषाई अल्पसंख्यकों की समझ और भाषाई बहुसंख्यक का भाषाई अल्पसंख्यक की तरफ नजरिया। कई राज्यों में भाषाई बहुसंख्यकों की माँग है कि अन्य 'भाषाई समूह उनकी भाषा की प्रमुखता को स्वीकार करे एवं इसे अधिकारिक भाषा भी स्वीकार करे। कई भाषाई समूह अधिकारिक रूप में भाषा की मान्यता की माँग करते हैं तथा इसे आठवीं सूची में शामिल करके उसे आधिकारिक भाषा की मान्यता की माँग करते हैं। ऐसी माँग आम तौर पर भाषाई समूहों द्वारा की अन्य माँगों के साथ की जाती है जिनमें आर्थिक विकास, रोजगार राजनीतिक स्वायत्ता एवं उनकी सांस्कृतिक पहचान का संरक्षण भी शामिल हैं। इस संबंध में, भाषाई समूहों की माँग नृजातीय समूहों की माँग से मिलती जुलती है। आप खंड 13.4 में नृजातीय समूहों के बारे में पढ़ेंगे। भाषाई अल्पसंख्यक अपने स्वयं के संरक्षण की माँग करते हैं। वे शिक्षण संस्थाओं में अपनी मातृ भाषा या अन्य भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने की माँग करते हैं। विभिन्न भाषाई समूहों में किसी राज्य में मतभेद होना भी भाषाई टकराव का कारण बनता है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं। इस इकाई में हम भाषाई समूह एवं राजनीति के बीच सम्बंधों की चर्चा करेंगे।

आइये हम पूर्वोत्तर भारत से शुरुआत करें। पूर्वोत्तर भारत के राज्यों में कई भाषाई समूह हैं। इन राज्यों में भाषाई समूह आमतौर पर नृजातीय समूहों से जुड़े हो सकते हैं। नृजातीय समूह दो समुदायों से संबंधित हैं। वे स्वदेशी समूह जो राज्य से बाहर नहीं गये हैं और जो सदियों से अपने क्षेत्रों में रह रहे हैं। और दूसरे वे हैं जो रोजगार की तलाश में अन्य क्षेत्रों से पलायन कर वहाँ बस गये हैं। दोनों देशज और प्रवासी समूह भी कई भाषाई समूहों में बंटे हुए हैं। असम उन पूर्वोत्तर राज्यों में शामिल हैं

जहाँ भाषाई अल्पसंख्यक समूह हैं, जिसने भाषाई बहुसख्यक (असमी) को अपनी भाषा को आधिकारिक और अदालती भाषा बनाने के प्रयासों का विरोध किया। असम में प्रमुख भाषाई संघर्ष असमियों और गैर–असमी भाषाओं के बीच रहा है। जब असम मिला जुला राज्य था और अन्य राज्य इसमें से नहीं बन थे, तब असमी एवं गैर–असमी भाषाओं के बीच भाषाई संघर्ष था। गैर–असमी भाषाओं में बंगाली, आदिवासी भाषा आदि शामिल थे। असमीया–बंगाली भाषाई संघर्ष औपनिवेशिक नीतियों से चल रहा था। असम पर कब्जे पर कुछ वर्षों के भीतर अंग्रेजों ने बंगाली भाषा को आधिकारिक भाषा बना दिया था। असमियों ने आरोप लगाया कि अंग्रेजों ने बंगालियों के दवाब में ऐसा किया था और यह उनके साथ भेदभावपूर्ण था। उन्होंने माँग की कि असमी भाषा को आधिकारिक एवं अदालती भाषा असम में घोषित किया जाए। इसने बौद्धिक स्तर पर दो भाषाई समूहों के बीच बहस को जन्म दिया। बंगालियों का मानना था असम में अलग से अदालती भाषा की जरूरत नहीं है क्योंकि असमी भाषा बंगाल की एक बोली (डायालेक्ट) है। जबकि असमी बुद्धिजीवियों का मानना था असमी बंगाली भाषा की बोली (डायालेक्ट) नहीं है। यह एक अलग भाषा है जिसकी अपनी लिपी एवं इतिहास है। बंगाली भाषा की जगह असमी भाषा को आधिकारिक भाषा बनाया जाना चाहिये। 1873 में अंग्रेजों ने वास्तव में असमी भाषा को आधिकारिक भाषा घोषित किया था। उसके बाद से ही दो भाषाई समूहों के बीच एक या दूसरे रूप में संघर्ष जारी रहा।

बंगाली ब्रह्मपुत्र घाटी में एक अल्पसंख्यक भाषाई समूह हैं जबकि असमी बराक घाटी में भाषाई अल्पसंख्यक समूह हैं। 1960 के दशक में असम सरकार ने असमी भाषा को संस्थाओं में माध्यम भाषा बनाने का प्रयास किया उन क्षेत्रों में जहाँ गैर–असमी लोग रहते थे। इसका इन क्षेत्रों में भारी विरोध हुआ और हिसंक झड़पें भी हुई। बंगालियों को डर था कि आधिकारिक भाषा के रूप में असमी का लागू होना, ब्रह्मपुत्र घाटी में बंगालियों की प्रगति में बाधा बनेगा। इसके परिणामस्वरूप असम के खासी बहुल क्षेत्र में एक आदिवासी राज्य की माँग उठने लगी। सभी गैर असमी समुदायों ने जिसमें बंगाली, गैर–आदिवासी और आदिवासी समूह भी शामिल थे, अलग राज्य के गठन के लिये आंदोलन शुरू किया। इसके बाद 1972 में एक नये राज्य मेघालय का गठन किया गया। एक अन्य उदाहरण में, जैसे कि संजीव वरूआ ने *इंडिया अगेंस्ट इटसेल्फ* में कहा है, 1986 में असम समझौते पर दस्तखत करने के बाद बोडो आदिवासियों ने यह रेखांकित किया कि उनकी पहचान असमियों से अलग है। और बोडो उनकी भाषा है। उन्होंने बोडो को आधिकारिक भाषा बनाने की माँग की जिसे बाद में इसका दर्जा दे दिया गया और इसे आठवीं अनुसूची में सम्मिलित किया गया।

दक्षिण भारत के दो राज्यों तमिलनाडु एवं कर्नाटक में 1992 में भाषा के आधार पर हिंसा की घटनाऐं घटीं। यह घटना इन दोनों राज्यों के बीच कावेरी जल के बंटवारे को लेकर हुई थी। कर्नाटक में कन्नड़ भाषी लोगों ने तमिल भाषी लोगों को निशाना बनाया और उनकी संपत्ति एवं जानमाल को भी भारी क्षति पहुँचाई। कर्नाटक में तमिल भाषी अल्पसंख्यकों ने उनकी भाषा एवं संपत्ति की रक्षा के लिए उचित कदम उठाने की माँग की। पॉल ब्रॉस ने यह माना कि राज्य सरकारों ने अल्पसंख्यक भाषा के खिलाफ भेदभावकारी नीतियों को लागू किया और केन्द्र सरकार ने उनका संरक्षण भी नहीं किया। उर्दू और मैथेली भाषा जो कि उत्तर बिहार में बोली जाती है, उनके प्रति केन्द्र सरकार का रवैया इसके कुछ उदारहण है।

इसके अलावा उर्दू जो कि देश के कई हिस्सों में बोली जाती है एवं उत्तर प्रदेश में अकेली सबसे बड़ी अल्पसंख्यक भाषा है, सांप्रदायिक ताकतों द्वारा यह भी विवाद में रहती है। उर्दू को आधिकारिक भाषा बनाने के प्रयास की कई प्रकार से आलोचना भी हुई तथा इसे मुस्लिम तुष्टीकरण के तौर पर भी देखा गया। लेकिन उर्दू बोलने वाले लोगों का यह मानना है कि उर्दू का विरोध करना अपने आप में भाषाई अल्पसंख्यकों के खिलाफ भेदभाव है। पंजाब में, भाषाई मुद्दे सांप्रदायिक विभाजन के साथ जुड़े गये खासकर 1960 के पंजाबी सूबा आंदोलन में हिन्दू एवं सिखों के बीच ऐसा देखा गया था। आर्य समाज ने गैर–सिख पंजाबी लोगों को भी प्रभावित किया। इन्होंने जनगणना के समय हिन्दी को अपनी भाषा घोषित किया था, हालांकि हकीकत में यह पंजाबी थी। पंजाब में हिन्दुओं को यह शंका थी कि अलग पंजाब बनने के बाद यह हिन्दुओं को पंजाब में अल्पसंख्यक में बदल दिया जायेगा। तमिलनाडु में हिन्दी भाषा का मामला भी तमिलनाडु की राजनीति में प्रमुख रूप से उभर कर आता है। 1960 में, इसके विरुद्ध आंदोलन भी शुरू हुआ था। संविधान सभा में, हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा का दर्जा दिया गया जिसे काँग्रेस लेजिस्लेटिव पार्टी ने भी अपने प्रतिवेदन में पारित किया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, पंद्रह वर्षों की संक्रमण अवधि के लिए हिन्दी को एक साझा भाषा के रूप में अंग्रेजी साथ आधिकारिक भाषा बनाया गया। दक्षिण भारत में हिन्दी को आधिकारिक भाषा बनाने का विरोध हुआ। इस कारण मद्रास प्रांत में प्रदर्शन भी हुए। इसकी अगुवाई द्रविड़ मुनत्र कड़गम (डी.एम.के.) द्वारा की गई थी। डी.एम.के. का मानना था कि हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा बनाना गैर–हिंदी भाषी लोगों पर इसका थोपना था।

अभ्यास प्रश्न 1

नोटः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर की जाँच इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) भाषाई एवं नृजातीय समूह क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) 1968 की शिक्षा नीति के अनुसार, त्रि–भाषा सूत्र (फार्मूला) क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

13.4 नृजातीय समूह

13.4.1 भारत में नृजातीय समूह

जैसाकि पहले बताया गया है कि नृजातीय समूहों को कुछ चिन्हों द्वारा पहचाना जा सकता है जो नृजातीय राजनीति विश्लेषक पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिये, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, कुछ विद्वान समूहों को एकल विशेषता के आधार पर पहचानते हैं जैसे कि भाषा, जाति या धर्म इत्यादि। लेकिन दूसरे विद्वान नृजातीय समूह को कई कारकों के आधार पर मानते हैं जिसमें, भाषा, जाति, नस्ल, संस्कृति, परंपरा, धर्म इत्यादि शामिल हैं। भारत में नृजातीय समूहों की सही संख्या का पता लगाना मुश्किल है। हालांकि हम उन्हें अलग–अलग कसौटी के आधार पर पहचान सकते हैं, जैसे सामाजिक, भाषाई सांस्कृतिक इत्यादि। नृजातीय समूहों की राजनीति सामाजिक और सांस्कृतिक मुद्दों, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और स्वायत्ता एवं आर्थिक असवरों या विकास पर घूमती है। इन मुद्दों की भूमिकाओं की सीमा अलग–अलग मामलों में भिन्न होती हैं। कभी–कभी भाषा, धर्म या क्षेत्रीय स्वायत्ता या विकास नृजातीय समूहों की राजनीति को प्रभावित करते हैं, वहीं दूसरी तरफ, राजनीतिक स्वायत्ता की माँग या राज्य के भीतर अलग राज्य बनाने की माँग भी राजनीतिक मुद्दा बन जाता है। राजनीति में इन कारकों का सापेक्ष प्रभाव राजनीतिक संदर्भ, राजनीतिक नेताओं या गैर–पार्टी संगठनों द्वारा लामबंदी पर निर्भर करता है।

जैसा कि नृजातीय राजनीति में विभिन्न नृजातीय समूह शामिल हैं जिनके परस्पर हित विरोधी दावे होते हैं, ये कभी–कभी नृजातीय समूहों के बीच हिंसा पैदा करते हैं या राज्य मशीनरी और नृजातीय समूहों के बीच हिंसा को बढ़ावा देते हैं। पहचान बनाने पर साहित्य में एक प्रश्न प्रासंगिक है यानि नृजातीय पहचान प्राकृतिक है या विरासत में मिली हैं। एक दृष्टिकोण का तर्क है कि नृजातीय पहचान कृत्रिम या अभिजात वर्ग द्वारा निर्मित हैं। इसे सघनवादी दृष्टिकोण के रूप में जाना जाता है। इसका मतलब है कि राजनीतिक अभिजात वर्ग नृजातीय पहचान का निर्माण करता है और उन्हें पूरा करने के लिये राजनीति में उनका उपयोग करता है। एक अन्य दृष्टिकोण का तर्क है कि नृजातीय पहचान प्राकृतिक या मौलिक है। इसका मतलब विभिन्न नृजातीय समूहों के बीच मतभेद स्वाभाविक है। इनका निर्माण नहीं हुआ है। भारत में क्षेत्रीय स्तर पर नृजातीय समूह निम्नलिखित है।

13.4.2 नृजातीय समूह और राजनीति

जैसा कि पहले बताया गया है भारतीय संदर्भ में नृजातीय पहचान कई कारकों पर आधारित हैं, जैसे – रीति–रिवाज, संस्कृति, भाषा, धर्म, इतिहास, इत्यादि। भाषाई पहचान के विपरीत जाति या सांप्रदायिक पहचान एक ही विशेषता पर आधारित है। चूंकि नृजातीय पहचान रिश्तों के बारे में है। एक नृजातीय राजनीति दूसरे नृजातीय समूह के आलोक में बनती है। फिर से, नृजातीय राजनीति बहुत हद तक वास्तविक एवं काल्पनिक कारकों पर निर्भर करती है। भारत के सभी राज्यों में कई नृजातीय समूह हैं जिनकी संख्या भिन्न होती हैं। उन राज्यों में जहाँ आत्म–निर्णय के लिये आंदोलन, स्वायत्ता आंदोलन, अलगाव आंदोलन, राजनीतिक आंदोलन हुआ है। वहीं पर नृजातीय राजनीति महत्वपूर्ण होती है। कभी–कभी नृजातीय राजनीति विभिन्न नृजातीय समूहों के बीच हिंसा की ओर ले जाती है।

भारत में उत्तरी–पूर्व भारत, पंजाब और जम्मू एवं कश्मीर (जिसे राज्य से दो केन्द्र शासित प्रदेशों में बदल दिया गया है, 5 अगस्त 2019 को) नृजातीय राजनीति के कुछ उदाहरण है। अतुल कोहली ने अपनी पुस्तक, *''डेमोक्रेसी एण्ड डवलपमेंट : फ्रोम सोशलिज्म टू प्रो–बिजनेस'* (अध्याय 2), में यह दलील दी कि नृजातीय लामबंदी बहु–सांस्कृतिक लोकतंत्र में देखा जाता है। भारत में तीन नृजातीय आंदोलनों का उदाहरण देते हुए (1) तमिलनाडु में तमिल आंदोलन 1950–1960 के दशकों में, 1980 के दशक में पंजाब में सिख आंदोलन तथा 1990 के दशक में जम्मू–कश्मीर में मुस्लिम आंदोलन कोहली का यह मानना था कि आत्म–निर्णय आंदोलन निम्न पथ का अनुमान करते हैं। सर्वप्रथम वे समय के साथ–साथ चरम सीमा पर पहुँचते हैं, फिर ये लगातार जारी रहते हैं, और आखिर में, ये पतन की ओर जाते हैं। आत्म–निर्णय आंदोलनों या नृजातीय संघटन की यह यात्रा कोहली द्वारा उल्टे या ''यू मोड़'' (U Turn) के रूप में वर्णित की गई है। यह खंड भारत में कुछ क्षेत्रों में राजनीति और नृजातीय समूहों के बीच संबंधों से संबंधित है।

भारत के उत्तरी पूर्वी राज्यों में, दो प्रकार के नृजातीय समूह हैं : वे लोग जो सदियों से रह रहे हैं तथा दूसरे वे लोग जो पलायन करके आकर बसे हैं। वे अब भी इस क्षेत्र में प्रवासी हैं। कई उदाहरणों में, स्वदेशी एवं प्रवासी समूहों में अंतर होता है। अर्थात किसी राज्य में स्वदेशी एवं प्रवासी दोनों ही समूह निवास करते हैं। सभी नृजातीय समूहों में कुछ विशेष लक्षण वास्तविक, काल्पनिक या दोनों ही हो सकते हैं। प्रवासी व्यक्ति वे हैं जो किसी राज्य से पलायन करके बसे हैं। यह संभव है कि समय–समय पर इन दोनों समूहों में विवाद भी चलता रहता है। और वे एक–दूसरे के विरोधी जैसा व्यवहार करते हैं। कभी–कभी वे समूह जिनमें नृजातीय समानताऐं हैं, वे भी विवाद के समय आपस में एक–दूसरे से अलग हो जाते हैं। पूर्वोत्तर में नृजातीय समूहों के कुछ उदाहरण इस प्रकार है :– मणीपुर और नागालैण्ड में कुकी एवं नागा, मणीपुर में मेइती, असम में बोडो, संथाल, कर्बी एवं गैर आदिवासी समूह तथा मेघालय में बंगाली, नेपाली, खासी, जेंतिया और गारो इत्यादि। कभी–कभी नृजातीय समूह जो आमतौर पर परस्पर विरोधी होते हैं, एक सामान्य लक्ष्य में एक–दूसरे का साथ देते हैं। लेकिन लक्ष्य की प्राप्ति के बाद उनके भीतर मतभेद उभर आते हैं। छोटे नृजातीय समूहों का आरोप हैं कि लक्ष्य प्राप्ति के बाद प्रमुख नृजातीय समूह उनके प्रति उचित व्यवहार नहीं करते। इससे उनमें उपेक्षा और भेदभाव की भावना पैदा होती है। इसके परिणामस्वरूप वे भी अपने नृजातीय समूह के लिये स्वायत्ता की माँग करते हैं। असम की बोडो जनजाति का उदाहरण इसमें प्रासंगिक हैं। बोडो ने असम में विदेशियों के खिलाफ छः वर्ष तक आंदोलन में भाग लिया था जिसका नेतृत्व ऑल असम स्टूडेंटस यूनियन ने किया था। लेकिन असम गण परिषद ने जब सरकार का गठन किया तो बोडो ने यह रेखांकित किया कि ए.जी.पी. सरकार ने बोडो की समस्याओं की उपेक्षा की गई जिसमें असम के बड़े नृजातीय समूहों का वर्चस्व था। परिणामस्वरूप बोडो ने एक अलग बोडोलैंड बनाने की माँग करते हुए एक आंदोलन शुरू किया।

नृजातीय समूहों की राजनीति का निर्णय नृजातीय बहुमत द्वारा किया जाता है। हम मेघालय का उदाहरण ले सकते हैं जहाँ नृजातीय बहुमत है। यहाँ पर तीन तरह के नृजातीय समूह हैं – खासी, गारो और जैन्तिया। यहाँ नृजातीय बहुमत मुख्य तौर पर बंगाली, नेपाली, बिहारी, और राजस्थानी/मारवाड़ियों की है। इन नृजातीय समूहों के दोनों समूहों ने एक साथ मिलकर 1960 के दशक में अलग मेघालय राज्य की माँग की। इनकी प्रमुख माँग असमी भाषा को आधिकारिक भाषा बनाने के खिलाफ थी,

क्योंकि यह असम के नृजातीय विशिष्ट वर्ग की भाषा मानी जाती थी। उस वक्त इनके बीच संबंधों को नृजातीय सद्भाव के तौर पर देखा जाता था। लेकिन 1972 में मेघालय के गठन के बाद इन दोनों के बीच संबंध नृजातीय विवाद और संघर्ष में बदल गया। विवाद का प्रमुख कारण था पहचान को संरक्षण, परंपरा, संस्कृति एवं स्वदेशी समुदायों की आर्थिक अवसर एवं संपत्ति का संरक्षण करना इत्यादि।

देशज नृजातीय समुदाय के लोगों ने राज्य द्वारा दिये विशेष सुविधाओं को सही ठहराया क्योंकि ऐसा संविधान की छठी अनुसूची में वर्णित किया गया है जो इनके लिये विशेष अधिकार के तौर पर दिया गया है। देशज समूहों का मानना है कि यदि ये कदम ना उठाये गये होते तो प्रवासी नृजातीय समूहों द्वारा उनके अधिकारों को हड़प लिया जाता। इससे उनकी पहचान भी खत्म हो जाती। देशज समुदायों के दावे को प्रायः प्रवासी समूहों ने विवादास्पद बताया। राजनीतिक संदर्भ में, राजनीतिज्ञों, राजनीतिक दलों द्वारा इन समुदायों को चुनाव में भागीदार बनाने के कारण नृजातीय हिंसा भी हुई है।

5 अगस्त, 2019 तक जम्मू एवं कश्मीर अलग राज्य था लेकिन इसे बाद में धारा 370 को हटाकर जो इसे विशेष राज्य का दर्जा प्रदान करती थी, दो भागों में विभाजित कर दिया। इसे दो केन्द्र शासित प्रदेशों में बदल दिया गया। जब जम्मू और कश्मीर राज्य था तो उस वक्त इसमें तीन क्षेत्र शामिल थे – जम्मू, कश्मीर और लद्दाख। जम्मू और कश्मीर के दो केन्द्र शासित प्रदेश बन जाने के बाद जम्मू और कश्मीर में अधिकांश हिन्दू एवं मुस्लिम समुदाय के लोग हैं जबकि लद्दाख में अधिकांश बौद्ध समुदाय के लोग हैं। यद्यपि ये समुदाय अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं, इन समुदायों की राजनीति जम्मू–कश्मीर राज्य के समय से ही विद्यमान है। जम्मू कश्मीर में नृनृजातीयता की नींव धर्म एवं क्षेत्र पर आधारित है। इसका परिणाम जम्मू और कश्मीर के विभाजन से पहले हम लद्दाख क्षेत्र को नया केन्द्र शासित प्रदेश बनाने की माँग तथा जम्मू द्वारा अलग राज्य की माँग से देख सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

नोटः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर की जाँच इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) नृजातीय राजनीति से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

2) उत्तर–पूर्व भारत में नृजातीय राजनीति की क्या विशेषताऐं हैं?

.....

.....

.....

.....

13.5 सारांश

पहचान के विभिन्न चिन्ह जैसे कि जाति, भाषा, क्षेत्र, रीति–रिवाज, परंपरा, अर्थव्यवस्था आदि लोकतांत्रिक देश की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लोगों के एक समूह में एहसास है कि वे समूह पहचान गठन में सामान्य विशेषताऐं साक्ष्य करते हैं। समूह पहचान गठन कई कारकों के आधार पर हो सकता है। यह आधार एकल कारक भी हो सकता है। जब किसी समूह का गठन भाषा के आधार पर किया जाता है तो उसे भाषाई समूह कहा जाता है। परंतु जब एक समूह का गठन कई कारकों के आधार पर किया जाता है तो उसे एक नृजातीय समूह के रूप में जाना जाता है। कुछ विद्वान एक समूह को नृजातीय समूह मानते हैं भले ही यह एकल मार्कर (चिन्ह) के आधार पर बनता हो। भाषाई और नृजातीय समूहों की राजनीति सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान के संरक्षण, राजनीतिक प्रतिनिधित्व एवं सशक्तिकरण एवं आर्थिक अवस्था एवं विकास के चारों ओर घूमती है। कई अवसरों पर, नृजातीय राजनीति विभिन्न समुदायों के बीच हिंसा का कारण भी बनती है। विभिन्न राज्यों में नृजातीय राजनीति हावी है।

13.6 संदर्भ

बरूआ, संजीव. (1999). *इंडिया अगेंस्ट इटसैल्फ : असम एण्ड द् पोलिटिक्स ऑफ नेशनेलिटी.* यूनिवर्सिटी ऑफ पेन्सिलवेनिया प्रेस.

ब्रास, पॉल, आर. (1974). *लैंग्वेज रिलिजन एन्ड पोलिटिक्स इन नोर्थ इंडिया.* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रसे कैम्ब्रिज.

नाग, सजल. (1990). *रूट्स ऑफ एथनिक कंफ्लिक्ट इन असम* : नेशनेलिटी क्वेशचन इन नार्थ–इस्ट इंडिया, मनोहर, नई दिल्ली.

कोहली, अतुल. (2009). *डेमोक्रेसी एण्ड डवलपमेंट इन इंडिया : फ्रोम सोशलिज्म टू प्रो–बिजनेस.* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस. नई–दिल्ली.

सारंगी, आशा. (2009). *लैंग्वेज एन्ड पोलिटिक्स इन इंडिया.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. नई दिल्ली.

13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1) भाषाई समूह वे हैं जो भाषा के आधार पर बनाये जाते हैं। भाषाई समूह के सदस्य एक समान भाषा बोलते हैं। नृजातीय समूह वे समूह हैं जिनकी विशेषताऐं संस्कृति, नस्ल, धर्म, रीति–रिवाज जैसे बहु–कारकों पर आधारित होती है। कुछ विद्वान इन समूहों में अंतर नहीं करते हैं जिनका गठन एकल मार्कर के आधार पर हुआ है। उनके अनुसार, सभी प्रकार के समूह नृजातीय समूह होते हैं।

2) 1968 की शिक्षा नीति के अनुसार, त्रि–भाषा सूत्र (फार्मूला) छह से आठवीं कक्षा तक के स्कूली बच्चों के लिये बनाया गया है जहाँ उन्हें तीन भाषाऐं सिखाई जाती हैं – हिन्दी, अंग्रेजी तथा आधुनिक भारतीय भाषा। उत्तर भारतीय राज्यों में,

आधुनिक भाषा दक्षिण भारत में बोली जाने वाली होगी। गैर हिन्दी राज्यों में (तमिलनाडु के अलावा जो दो भाषा फार्मूला अपनाता है) आधुनिक भाषा कोई भी क्षेत्रीय भाषा हो सकती थी।

अभ्यास प्रश्न 2

1) नृजातीय राजनीति किसी नृजातीय समूह के मुद्दों से संबंधित है। ये मुद्दे उनकी सांस्कृतिक एवं सामाजिक पहचान, राजनीतिक प्रतिनिधित्व तथा सशक्तिकरण, आर्थिक अवसरों से संबंधित होते हैं।

2) सभी उत्तर–पूर्वी भारत के राज्यों में बहु–नृजातीय समूह हैं। इन्हें हम दो समूहों में बाँट सकते हैं – देशज और प्रवासी। नृजातीय राजनीति उत्तर–पूर्वी भारत में उनकी पहचान के संरक्षण, स्वायत्ता आंदोलन एवं आर्थिक अवसरों से संबंधित है। कई अवसरों पर नृजातीय राजनीति, नृजातीय हिंसा में तब्दील हो जाती है। यह हिंसा नृजातीय समूहों या राज्य की एंजेंसियों जैसे पुलिस के बीच प्रकट हो सकती है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 14 क्षेत्र और जनजाति*

संरचना

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 जनजातियाँ कौन है?

14.2.1 भारत में अनुसूचित जनजातियाँ

14.3 भारत में जनजातियों का क्षेत्रीय वितरण

14.4 जनजातियाँ और राजनीति

14.4.1 लामबंदी के विभिन्न पैर्टन (तरीके)

14.4.2 जनजाति आंदोलन की विरासत

14.4.3 स्वातत्रोंत्तर भारत में जनजाति आंदोलन

14.5 क्षेत्रीय विकास और जनजाति आवास क्षेत्र

14.6 सारांश

14.7 संदर्भ

14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्नलिखित समझ सकेंगे :–

- क्षेत्र एवं जनजातियों के बीच संबंधों का महत्व
- भारत में जनजातियों का क्षेत्रीय वितरण
- उनकी विशेषताओं की पहचान करना और
- देश के विभिन्न क्षेत्रों में राजनीतिक लामबंदी के तरीकों की व्याख्या करना।

14.1 प्रस्तावना

भारत में जाति, भाषा, जेंडर की भांति पहचान की राजनीति में क्षेत्र और जनजाति भी शामिल हैं। आपने पहचान की राजनीति से संबंधित अन्य कारकों के बारे में अन्य इकाइयों में पढ़ा होगा। इस इकाई में आप क्षेत्र और जनजातियों के बीच संबंधों के बारे में पढ़ेंगे तथा उनका उन क्षेत्रों में प्रभाव जहाँ पर वे लोग निवास करते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में राजनीति के सामने जो सबसे महत्वपूर्ण चुनौती है वह है विकास के लक्ष्य हासिल करना, जो कि देश के विभिन्न क्षेत्रों में विस्तृत विविध प्रकार के लोगों की जरूरतों के लिये आवश्यक है। स्वातंत्रोत्तर काल में, भारत असमान विकास हुआ है, तथा बहुत अधिक सामाजिक–आर्थिक विविधताऐं भी क्षेत्रों एवं विभिन्न समूहों के बीच देखने को मिली है। ऐसे ज्यादातर क्षेत्रों में जनजाति लोग रहते हैं जहाँ पर असमानता और विविधताऐं पायी जाती हैं। यह विशेष रूप से

* डॉ. शेल्जा सिंह, ऐसिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, भारती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

इसलिये है क्योंकि उन राज्यों में जनजाति जनसंख्या अधिक है एवं वे समाज के कमजोर एवं वंचित वर्गों से भी आते हैं। इस संदर्भ में, जनजातियों की पहचान भारत में खासकर विभिन्न क्षेत्रों में एक प्रशासनिक कार्य बन गया है। यह इकाई विभिन्न क्षेत्रों की जनजाति जनसंख्या की पहचान के बारे में उभरते हुए विभिन्न राजनीतिक पहलुओं की समझ के बारे में आपको बताने की कोशिश करेगी। जनजातियों एवं क्षेत्रों के बीच संबंधों तथा राजनीतिक लामबंदी पर चर्चा करने से पूर्व, यह जानना अति आवश्यक है कि जनजाति का क्या अर्थ है एवं उनकी क्या विशेषताऐं हैं। इस प्रकार खंड 14.2 नीचे जनजातियों के अर्थ एवं उनकी विशेषताओं से संबंधित है, तथा खंड 14.4 में उनकी राजनीति से संबंधित चर्चा का वर्णन किया गया है।

14.2 जनजातियाँ कौन है?

जनजातियों को विभिन्न विशेषताओं के आधार पर परिभाषित किया जा सकता है। इनमें से कुछ इस प्रकार हैंः प्रकृति के नजदीक रहना, वन एवं प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहना, विभिन्न सांस्कृतिक प्रथाओं और रीति–रिवाजों को मानना, जैसे कि भोजन की आदतें, गाने, कपड़े पहनने के तौर–तरीके, विवाह रीति–रिवाज, लिंग संबंध, पारंपरिक मुखिया या मुखिया प्रभुत्व का महत्व आदि। ये कुछ ऐसी विशेषताऐं हैं जो जनजाति की पहचान को जाति और वर्ग से अलग करती है। गैर–जनजाति समुदायों की तुलना में, जनजातियों में अधिक लिंग और सामाजिक समानताऐं पायी जाती है। इनकी विशेषताओं पर भी सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन का प्रभाव पड़ा है। भारत में जनजाति जनसंख्या की विभिन्न श्रेणी है। उत्तर–पूर्व भारत के जनजाति देश के अन्य हिस्सों से अलग है। यहां तक कि एक ही क्षेत्र में रहने वाली जनजातियों के बीच भी अंतर पाया जाता है। भारत में जनजाति जनसंख्या की पहचान दो धारणाओं पर आधारित है – एक, ब्रिटिश औपनिवेशिक राज्य की धारणा और दूसरी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय राज्य की धारणा। पहली धारणा जनजातियों को एक अलग प्रकार से देखती है। यह उन्हें एक विशिष्ट श्रेणी के रूप में मानती है खासकर उनके जीने के तरीकों, तथा समाज की मुख्यधारा से बाहर होने के कारण। जबकि दूसरी धारणा एक विकासवादी परिप्रेक्ष्य के रूप में जानी जाती है। इसके अनुसार जनजातियों को समुदायों के रूप में देखा जाता है जो कि समाज के अन्य वर्गों से काफी पीछे है – आमतौर पर ''मुख्यधारा'' के संदर्भ में इन्हें विकास के साथ देखा जाता है, ताकि इन्हें भी विकसित करने के लिये उनका समावेशीकरण करने की आवश्यकता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, भारतीय राज्य ने भारत में जनजातियों को एक प्रशासनिक और कानूनी रूप में पहचाना है। भारत के संविधान के अनुसार, उन्हें अनुसूचित जनजाति (एस.टी.) के रूप में वर्गीकृत किया गया है। भारतीय संविधान की पांचवी और छठी अनूसचियाँ उन क्षेत्रों को निर्दिष्ट करती है जिनमें अनुसूचित क्षेत्रों में अधिकांश जनजातीय आबादी रहती है। इन्हें भारतीय के संविधान अनुच्छेद 244 (1), 244 (2) द्वारा चिन्हित किया गया है। संविधान का अनुच्छेद 366 (25) जनजातियों को इस प्रकार से परिभाषित करता है कि, ये वे समूह या जनजाति समुदाय, या ऐसे जनजाति और जनजाति समुदाय का समूह हैं। जिन्हें जनजाति समूहों के हिस्से के रूप में अनुसूचित किया गया है, और जिन्हें अनुच्छेद 342 के तहत् अनुसूचित जनजाति (एस.टी.) के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। भारतीय संविधान में सरकार द्वारा वित्त पोषित शिक्षा संस्थाओं और सरकारी नौकरियों में जनजातियों के लिए 7 प्रतिशत सीटों के आरक्षण का भी प्रावधान किया गया है। संवैधानिक प्रावधानों के

अलावा भी, स्वतंत्र भारत में जनजाति लोगों के कल्याण के लिये, विभिन्न कानूनी और प्रशासनिक प्रावधान भी किये गये हैं।

14.2.1 भारत में अनुसूचित जनजातियाँ

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में 700 से अधिक जनजातियाँ है जो लगभग भारतीय जनसंख्या का 9 प्रतिशत है। उन्हें विशेष प्रावधान के तहत् उपयुक्त नीतियों का लाभ उठाने का अधिकार देते हैं जो उनके सामाजिक और आर्थिक विकास और सास्कृतिक पहचान की सुरक्षा करते हैं। उनके कल्याण के लिये सकारात्मक नीतियों के प्रावधान के बावजूद, भारत की जनजातियाँ अभी भी अधिकांश संकेतकों के मामले में, हाशिये पर है। जनजातियों आबादी वाले बड़े हिस्से वाला क्षेत्र अभी भी अविकसित है।

भारत के अधिकांश क्षेत्रों में, उनकी स्थिति की विशेषता व्यापक गरीबी, कुपोषण, निरक्षरता और स्वास्थ्य एवं अन्य सेवाओं तक उनकी पहुँच की कमी है। अनुसूचित जनजाति मंत्रालय के आँकड़ों के अनुसार, (2016–2017), ग्रामीण इलाकों में लगभग 47.1 प्रतिशत जनजाति की जनसंख्या गरीबी की रेखा के नीचे रहती है। यह आंकड़ा राष्ट्रीय औसत 33.8 प्रतिशत की तुलना में बहुत अधिक है। इस मंत्रालय के रिकार्ड के अनुसार 9.4 प्रतिशत एस.टी. जनसंख्या भूमिहीन है, जबकि यह प्रतिशत राष्ट्रीय स्तर पर 7.4 प्रतिशत है। एस.टी. की शिशु मृत्युदर भी 35.8 प्रति हजार जीवित जन्म दर है, जबकि राष्ट्रीय औसत 18.4 प्रति हजार जन्म दर है। अनुसूचित जनजातियों की औसत साक्षरता 59 प्रतिशत है जबकि यही राष्ट्रीय औसत दर 73 प्रतिशत है। 1951 से 1990 के बीच अनुसूचित जन जातियों का 40 प्रतिशत जनसंख्या विस्थापित है। विस्थापन का प्रमुख कारण है अस्थिर विकास, जिसमें बाँध निर्माण, उद्योग खनन, वन्यजीव अभ्यारण का बनाना आदि शामिल है। केवल आधे से थोड़ा अधिक विस्थापित आबादी का पुनर्वास किया जा सका है। एन.एस.एस.ओ. 2010 के अनुसार, अनुसूचित जनजातियों की कार्यदल (वर्कफोर्स) में भागेदारी 60 है जो कि राष्ट्रीय औसत 53 से अधिक है। हालांकि यह ज्यादातर असंगठित क्षेत्र में है जहाँ पर किसी भी प्रकार की कोई रोजगार सुरक्षा नहीं है। यहाँ पर यह बात ध्यान देने की है कि ये आँकड़े भारत में जनजातियों की स्थिति के बारे में व्यापक तस्वीर पेश करते हैं। जैसा कि वे विभिन्न क्षेत्रों और राज्यों में फैले हुए हैं, उनके विकास के संकेतकों में अंतर हैं।

14.3 भारत में जनजातियों का क्षेत्रीय वितरण

भौगोलिक संरचना के आधार पर भारत में कई क्षेत्र हैं। भारत के सभी राज्यों में जनजातियाँ नहीं पाई जाती है। भारत में विभिन्न क्षेत्रों को सामाजिक, सांस्कृतिक या भाषाई कारकों के विकास और संरचना के आधार पर विभेदित किया जा सकता है। फिर से, राज्यों के भीतर भी क्षेत्र या उप–क्षेत्र है। विशेषकर उनके विकास के स्तर के आधार पर क्षेत्रों को विकसित, अविकसित या कम विकसित के तौर पर पहचान की जा सकती है। इसी तरह क्षेत्रों के भीतर क्षेत्र को भी विकसित, अविकसित या कम–विकसित के तौर पर पहचान की जा सकती है। कुछ लोगों के अनुसार, कम–विकसित क्षेत्रों को विकसित क्षेत्रों की ''आंतरिक कॉलोनी'' के रूप में वर्णित किया गया है। इस तरह कम–विकसित क्षेत्र राज्यों के भीतर या देश में विकसित क्षेत्रों की कॉलोनी के रूप में वर्णित की गई है। किसी क्षेत्र के विकास का स्तर जहाँ पर राज्य स्थित है, उस राज्य के विकास के स्तर का संकेतक है। भारत में कुछ राज्य

विकसित क्षेत्रों तथा कुछ राज्य पिछड़े क्षेत्रों पर स्थित है। जनजातियों के विशेष संदर्भ में, जनजातियों के ज्यादातर क्षेत्र वहाँ पर है जहाँ या तो कम विकास हुआ है या फिर भौगोलिक तौर पर एकदम परिधी पर है।

भारत की जनगणना (2001) के अनुसार, मिजोरम, नागालैंड, मेघालय, अरूणाचल प्रदेश, और केन्द्र शासित प्रदेश लक्ष्यद्वीप, दादर और नागर हवेली में अनु. जनजाति की जनसंख्या लगभग 60 प्रतिशत है। भारत में अनु. जनजातियों की विविधता को देखते हुए, कई विद्वानों ने उन्हें विभिन्न मापदंडों के आधार पर वर्गीकृत किया है, जैसे आर्थिक, व्यावसायिक, भाषा, संस्कृति इत्यादि। इनमें से एक वर्गीकरण विभिन्न क्षेत्रों में फैले हुए जनजातियों से संबंधित है जो कि समाजशास्त्री बी.एस. गुहा ने भारत में जनजाति लोगों के भौगोलिक वितरण को समझने का चित्रण प्रस्तुत किया है। उन्होंने क्षेत्रीय वितरण को तीन प्रमुख क्षेत्रों में विभाजित किया है। वे इस प्रकार है :–

उत्तर एवं उत्तर–पूर्व जोन (क्षेत्र) – इस क्षेत्र में खासी, गारो, नागा, लेपचा जैसी जनजातियाँ असम, मेघालय, नागालैण्ड, सिक्किम एवं त्रिपुरा राज्यों में जनजातियाँ निवास करती है। इस क्षेत्र में वे जनजातियाँ भी है जो कि कश्मीर, हिमाचल प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश का उत्तरी भाग एवं पंजाब का पूर्वी हिस्सा शामिल है। इन क्षेत्रों की जनजातियाँ ज्यादातर कृषि कार्यों में लिप्त हैं।

सेंन्ट्रल जोन (मध्य क्षेत्र) – यह क्षेत्र मध्य जोन भी कहलाता है जो उत्तर–पूर्वी क्षेत्र से गारो पहाड़ियों और राजमहल पहाड़ियों द्वारा अलग होता है, मध्य प्रदेश, झारखंड, छत्तीसगढ़ और उड़ीशा तक फैला हुआ है। तथा इसमें उत्तर–प्रदेश, बिहार, उत्तरी महाराष्ट्र एवं दक्षिणी राजस्थान की जनजाति इसमें शामिल है। इस क्षेत्र के प्रमुख जनजाति है – गोंड, भील, खोंड भूमिजीस, भिया तथा मुंडा। ये जनजातियाँ भी कृषि एवं व्यवसाय संबंधी कार्यों में लगी हुई हैं।

दक्षिण क्षेत्र – दक्षिण क्षेत्र की जनजातियाँ आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु एवं कोचिन में रहते हैं। इस क्षेत्र के जनजाति समूहों में टोडा, चेंचस, इरूला, पनियान, येरूवा और कुरंबा आदि शामिल है। ये आबादी बड़े पैमाने पर शिकार और मछली पकड़ने जैसी गतिविधियों में शामिल है। कुछ आदिम जनजातियाँ जैसे कि कादर, मालवदान, कनिक्कर और मालकुरवन हैं जो कि त्रावनकोर और कुछ अन्य हिस्सों में पर्वतमाला के जंगलों में सबसे अधिक विश्व की आर्थिक रूप से पिछड़ी जनजातियाँ मानी जाती है।

इस वर्गीकरण के अलावा एक अन्य क्षेत्र अंडमान और निकोबार समूह का है जहाँ की जनजातियों में अंडमानी, निकोबारी, जरावा, और ओंग शामिल हैं। जैसे कि पहले कहा गया है कि संविधान की पाँचवी एवं छठी अनुसूचियों में इनके लिए विशेष प्रावधान किये गये हैं जो इनकी सांस्कृतिक पहचान और राजनीतिक स्वायत्तता की रक्षा करते हैं। निम्नलिखित तालिका में इसका विवरण दिया गया है।

भारत के संविधान की पाँचवीं अनुसूची के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र

राज्य	क्षेत्र
1) आंध्र प्रदेश	विशाखापट्नम, ईस्ट गोदावरी, वैस्ट गोदावरी, अदिलावाद, श्रीकाकुलम, विजियानग्रम, महबूब नगर, प्रकाशम (केवल कुछ अनुसूचित मंडल)

2) झारखंड	डुमका, गोड्डा, देवगढ़, शहाबगंज, पाकुर, राँची, सिहंभूम (पूर्व एवं पश्चिम), गुमला, शिमडेगा, लोहारडगा, पलामू, गरवा (कुछ जिले ही जनजाति खंड है)
3) छत्तीसगढ़	सरभुजा, बस्तर, रामगढ़, रायपुर, राजनंदगाँव, दुर्ग, बिलासपुर, शेहडोल, छिंदवाड़ा, कांकेर
4) हिमाचल प्रदेश	लाहौल और स्पीती जिले, किन्नौर, पाँगी तहसील और चंबा जिले में भरमौड़ उप–तहसील।
5) मध्य प्रदेश	झाबुआ, माँडला, धार, खरगौन, ईस्ट निमार (खांडवा) सैलाना तहसील बैतूल, सिंयोनी, बालघाट, मुरैना।
6) गुजरात	सूरत, भरुच, डाँग, वलसाड़, पंचमहल, सडोदरा, साबरकाँटा (इन्हीं जिलों के हिस्से)
7) महाराष्ट्र	थाने, नासिक, धूले, अहमदनगर, पूने, नांदेड़, अमरावती, यवतमाल, गढ़ाचिरौली, चंदन पुर (इन्हीं जिलों के हिस्से)
8) उड़ीसा	मयूरमंज, सुन्दरगढ़ कोरापुट (इन तीन जिलों में पूर्ण अनुसूचित क्षेत्र) रायगढ़, कियोंझार, संबलपुर, बुद्धकंडमाला, गंजम, कालाहाँडी, बोलंगीर, बालासोर।
9) राजस्थान	बाँसवाड़ा, डूंगरपुर (पूर्णतः जनजाति जिले) उदयपुर चित्तौड़गढ़, सिरौही, (इन जिलों के कुछ हिस्से)।

नोट : उत्तर पूर्व के राज्य असम, मेघालय, त्रिपुरा, मिजोरम छठी अनुसूची में शामिल है, पांचवीं सूची में नहीं।

अभ्यास प्रश्न 1

नोटः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर की जाँच इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) जनजातियों की विशेषताऐं क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) जनजातियों के क्षेत्रीय वितरण की चर्चा कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

14.4 जनजातियाँ और राजनीति

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है कि विभिन्न क्षेत्रों में जनजातियों की विशिष्ट विशेषताऐं सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन है। ये विशेषताऐं विकास से संबंधित कारकों से प्रभावित हुई है। इसके प्रत्युत्तर कुछ मुद्दे उभर कर सामने आये हैं जो कि प्राकृतिक संसाधनों के शोषण एवं दोहन से हैं जैसे कि खनिज, खदान, वन जो जनजातियों को उनके निवास स्थान से विस्थापित करने का प्रमुख कारण बने हैं, तथा उनके परंपरागत रीति–रिवाजों एवं अपनी पहचान में भी बदलाव आया है। इसने जनजातियों के भीतर अलगाव पैदा किया है। देश के विभिन्न क्षेत्रों में ऐसी भावना का तात्पर्य है कि अन्य क्षेत्रों की तुलना में जनजाति बहुल क्षेत्र वंचित बने हुए है। आजादी के बाद की अवधि में ये मुद्दे राजनीतिक बन गये हैं जो कि भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जनजातियों की लामबंदी से संबंधित है। सापेक्ष अभाव और उनकी विशिष्ट पहचानों जैसे कि रीति–रिवाज परंपरा, जीवन का पैटर्न इत्यादि में परितर्वन के परिणामस्वरूप भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जनजातियों की राजनीतिक लामबंदी हुई है। वे पर्याप्त उपायों की मांग करते हैं, ताकि उन्हें विकास के अवसर प्रदान किए जाएं। उनकी लामबंदी का स्तर एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न हैं। उनकी लाभबंदी के पैटर्न में बदलाव आया है, खासकर उनके मुद्दे अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग विशेषताऐं रखते हैं।

14.4.1 लामबंदी के विभिन्न पैटर्न (तरीके)

विभिन्न क्षेत्रों में जनजातियों की लामबंदी के स्वरूपों/स्तरों में भिन्नता पाई गई, मोटे तौर पर क्योंकि जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि भारत में अधिकांश समुदायों की तरह जनजाति एक समरूप श्रेणी नहीं बनाते हैं। वे विभिन्न प्रकार के मुद्दों का सामना करते हैं, तथा विभिन्न क्षेत्रों में अलग ऐतिहासिक पृष्ठभूमि रखते हैं। कुछ क्षेत्र दूसरे क्षेत्रों की तुलना में अविकसित है और इसलिये मुद्दों और अवधारणाओं को राजनीतिक लामबंदी के विभिन्न रूपों द्वारा व्यक्त किया जाता है। कई जनजातियों ने अपनी कमजोर एवं पिछड़ी स्थिति के बारे में अपने विचार व्यक्त किये हैं। विभिन्न क्षेत्रों में लामबंदी एवं आंदोलन किये गये है जैसे कि पूर्वोत्तर क्षेत्र, मध्य भारत, एवं अन्य क्षेत्रों में इन क्षेत्रों की जनजातीय आबादी के सामने आने वाली मुश्किलों को उजागर करने के लिये आवाजे उठी हैं। राजनीतिक दल, नागरिक समाज संगठन और छात्र संगठन इस लामबंदी में अग्रणी भूमिका निभा रहे हैं। उप खंड 14.2.3 विभिन्न क्षेत्रों में जनजातियों के राजनीतिक लामबंदी के पैटर्न के बारे में होगा, जो पूर्वोत्तर भारत, मध्य भारत एवं अन्य क्षेत्रों से संबंधित है। भारत में जनजाति आंदोलन की प्रकृति को समझने के लिये, विशेषकर आजादी के बाद के काल में, यहाँ पर यह जानना जरूरी है कि भारत में जनजाति आंदोलनों की पृष्ठभूमि एवं विरासत को भी जानना एवं समझना आवश्यक है।

14.4.2 जनजाति आंदोलन की विरासत

जनजाति आंदोलन की शुरुआत औपनिवेशिक काल से ही मानी जाती है। स्वांतत्रोत्तर भारत में आंदोलन अधिक संगठित और बड़े पैमाने पर विस्तृत हो गये थे जिनके आर्थिक अभाव एवं वन अलगाव जैसे कुछ प्रमुख मुद्दे महत्वपूर्ण बन गये। औपनिवेशिक काल के दौरान, जनजाति विभिन्न क्षेत्रों में, सामूहिक कार्यवाही के लिये

लामबंद हुए थे। ऐतिहासिक रूप से जनजातियों के राजनीतिक आंदोलन जमींदारों के उत्पीड़न के खिलाफ रहे है। इसके अलावा भूमि एवं जंगलों पर जनजातियों के अधिकारों का संरक्षण भी था। के.एस. सिंह (1986) ने जनजाति आंदोलन को स्वतंत्रता पूर्व के काल में चार वर्गों में बाँटा है। कृषि, संस्कृतिकरण, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक। सिंह के अनुसार, जनजाति आंदोलन में सामुदायिक चेतना काफी मजबूत हैं और वे कृषि एवं वन पर आधारित है और उनका नृजातिय एवं सांस्कृतिक चरित्र है। 18वीं सदी के मध्य में विहार में चारसू विद्रोह के साथ राज्य में कोल उलगुलान (1831–32) संथाल हूल (1855) विरसा मुंडा के नेतृत्व प्रतिरोध (1895–1900) जैसे कुछ लोकप्रिय उदाहरण है। भारत में जनजाति आंदोलनों ने ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान जनजातियों ने औपनिवेशिक विस्तार के खिलाफ लड़ाई लड़ी। पश्चिम बंगाल में भी अनेक आंदोलन हुए। जनजाति समुदायों ने साहूकारों और बाहरी लोगों द्वारा उनकी भूमि को हड़पने और शोषण करने का विरोध किया। पश्चिम बंगाल के ताना भगतों ने ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान ब्रिटिश शोषण के खिलाफ एक अहिंसक सत्याग्रह का नेतृत्व किया था। कई उदाहरणों में जनजातियों ने तर्क दिया कि उनकी समस्याओं का हल तभी संभव है जब उन्हें शासन करने का अधिकार हो, और उन्हें स्वायतता या खुद के लिये अलग राज्य हो। इस संदर्भ में, 1930 में, जयपाल सिंह के नेतृत्व में जनजाति राजनेताओं के एक समूह ने साइमन कमीशन को एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें अलग राज्य की माँग की जनजातियों के लिये जो कि छोटा नागपुर और संथाल परगना क्षेत्र दक्षिण बिहार से संबंधित थे। अलग राज्य की माँग आजादी के बाद भी जारी रही।

जनजाति नेता भारतीय संविधान के अंतर्गत संविधान के ढाँचे के तहत् जनजातियों के लिये स्वायत्त प्रांत या अलग राज्य की माँग करते रहे। जयपाल सिंह के नेतृत्व में जनजाति महासभा के रूप में जाना जाने वाला एक जनजाति संगठन ने जनजाति समूहों की माँगों को स्पष्ट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1949 में झारखंड पार्टी के गठन के बाद भारत के मध्य क्षेत्र में जनजाति राजनीति में एक मील का पत्थर थी। झारखंड पार्टी ने भारत के पहले आम चुनावों में एक जनजाति पार्टी के रूप में भाग लिया था। इसने स्वतंत्रता पूर्व झारखंड राज्य के अलग राज्य की माँग को जारी रखा। 2000 में झारखंड के अलग राज्य बन जाने के बाद औपनिवेशिक काल में शुरू हुए आंदोलन का अंत हुआ। उत्तर–पूर्व भारत में, राजनीतिक स्वायत्तता के लिये नागाओं की लामबंदी इस क्षेत्र का महत्वपूर्ण उदाहरण था। 1918 में, नागाओं ने नागा क्लब की स्थापना की थी जिसे 1946 में नागा राष्ट्रीय समिति में परिवर्तित कर दिया गया था। नागाओं की माँग थी कि उनकी सांस्कृतिक पहचान की रक्षा की जाये एवं उन्हें संपूर्ण राजनैतिक स्वायत्ता प्रदान की जाये जो कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समाप्त हो गई थी। नागा क्लब ने साइमन कमीशन को प्रतिवेदन सौंपा, जिसमें उन्होंने माँग की कि उन्हें आत्म–निर्णय का अधिकार दिया जाये जब ब्रिटिश शासक भारत से चले जाएंगे।

14.4.3 स्वातंत्रोत्तर काल में जनजाति आंदोलन

घनश्याम शाह (2004) ने जनजाति आंदोलनों को विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया है जैसे – पर्यावरण, पहचान, राजनीतिक स्वायत्तता, संसाधनों का आत्म–प्रबंधन, तथा विस्थापन से संबंधित मुद्दे आदि। इनके विस्तृत रूप को पहचानने के लिये हमें इनके तीन प्रकार के मुद्दों की चर्चा करना आवश्यक है। स्वातंत्रोत्तर काल में ये प्रमुख मुद्दे

थे आर्थिक, सांस्कृतिक पहचान एवं राजनीतिक स्वायत्तता। इन मुद्दों का सापेक्ष महत्व राजनीतिक लामबंदी में, क्षेत्र के अनुसार भिन्न–भिन्न है। उदाहरण के लिये, उत्तर–पूर्व भारत में जनजाति आंदोलन मुख्य तौर पर सांस्कृतिक पहचान एवं राजनीतिक स्वायत्तता से संबंधित है। जबकि अन्य क्षेत्रों में, इसका संबंध प्राकृतिक संसाधनों का शोषण एवं संबंधित मुद्दे है।

उत्तर–पूर्व भारत में जनजाति आंदोलन

भारत के सभी उत्तर–पूर्वी राज्यों ने जनजाति आंदोलनों को देखा है जिसमें सभी प्रकार के सवालों चाहे सांस्कृतिक पहचान की रक्षा हो, या फिर राजनीतिक स्वायत्तता प्राप्त करना हो इत्यादि के बारे में वे एकजुट एवं लामबंद हुए है। ये मुद्दे प्रायः उनके आर्थिक हितों से भी जुड़े हुए हैं। प्रायः उनकी लामबंदी के कारण विद्रोह, नृजातिय विवाद और हिंसा बढ़ी है। जनजातियों की राजनीतिक लामबंदी के कुछ उदाहरण हैं जिसमें राजनीतिक स्वायत्ता की माँग की गई। उन क्षेत्रों में जहाँ नागा का प्रभुत्व था विशेषकर नागालैण्ड, एवं मिजोरम में, बोडो भाषा की रक्षा करने और बोडो अधिकृत क्षेत्र के लिये स्वायत्ता प्राप्त करना, कार्बी आँग लोंग जिलों में राजनीतिक स्वायत्तता प्राप्त करना, या मणिपुर में नागा एवं कुकी के बीच संघर्ष हो, या फिर मेघालय में जनजाति या गैर–जनजाति के बीच विवाद हो। एस.एम. दूबे (1982) ने जनजाति आंदोलनों को निम्न वर्गों में विभाजित किया हैः अ) धार्मिक एवं समाज सुधार आंदोलन, ब) पृथक राज्य के लिए आंदोलन, स) विद्रोह आंदोलन, द) सांस्कृतिक अधिकार आंदोलन। जैसा कि आपने ऊपर पढ़ा होगा नागा द्वारा राजनीतिक आत्म–निर्णय की माँग औपनिवेशिक काल के समय से चली आ रही है जब 1946 में नागा द्वारा नागा राष्ट्रीय समिति (एन.एन.सी.) का गठन किया गया था। एन.एन.सी. ने अलग राज्य की माँग दोहराई जिसमें नागालैण्ड, अरूणाचल प्रदेश, और असम को मिलाकर एक राज्य का गठन करना जिसमें नागा जनसंख्या आवास करती हो।

1947 में (जून, 26–28), एन.एन.सी. ने असम के गवर्नर अकबर हैदरी के साथ 9 सूत्रीय समझौते पर हस्ताक्षर किये थे, जो भारत सरकार का प्रतिनिधि था। यह नागा – हैदरी समझौते के रूप में जाना जाने लगा। नागा–हैदरी सझौते के 9 बिन्दु थे। इस समझौते ने यह रेखांकित किया कि नागाओं को अपनी इच्छा के अनुसार स्वतंत्र रूप से विकसित होने के अधिकार को मान्यता दी जाये। ये बिंदू मुख्य रूप से नागा प्रथागत कानूनों की प्रधानता से संबंधित थे जो न्यायपालिका, कार्यपालिका एवं विधायिका के पहलुओं से संबंधित थे, जनजातीय भूमि का संरक्षण बिना गैर नागा परिषद की सहमति के नहीं हो सकता था। समझौते ने असम के गवर्नर को यह अधिकार दिया कि वह भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में विशेष जिम्मेदारी के साथ 10 वर्षों की अवधि के लिये समझौते का पालन किया जाये। और दस वर्षों के अंत में नागा परिषद से यह पूछा जाएगा कि क्या वे समझौते का विस्तार करना चाहते हैं या एक नये समझौते पर हस्ताक्षर करना चाहते हैं। 1956 में, ए. पिन्टो ने जोकि नागाओं के एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे, स्वतंत्रता के लिये लंदन में नागाओं के लिये एक निर्वासित सरकार की स्थापना की। इसने उग्रवाद को जन्म दिया और उग्रवादी नागाओं एवं सेना के बीच संघर्ष भी हुआ। 1975 में, शिलोंग में एन.एन.सी. और भारत सरकार के बीच एक समझौते पर हस्ताक्षर किये गये थे। यह शिलोंग समझौते के रूप में जाना जाता है। शिलोंग समझौते के अनुसार, नागाओं ने भारत के संविधान को स्वीकार किया और सरकार ने नागा राजनीतिक कैदियों को रिहा किया

और उनके पुनर्वास का वादा किया। शिलोंग समझौते पर हस्ताक्षर का नागाओं के एक वर्ग ने स्वागत नहीं किया (फड़नीस, 1989)। 1980 में आपसी मतभेद की वजह से एन.एस.सी.एन. (नेशनल सोशसिस्ट कोंसिल ऑफ नागालैंड) का गठन हुआ। इसका गठन तंगखुल नागा मूवियाह और इसाक स्वू के द्वारा किया गया।

एन.एस.सी.एन. ने दो प्रमुख माँगों को उठाया, नागालैंड का गठन जिसे ग्रेटर नागालैण्ड या 'नागालिम' राज्य के तौर पर गठित किया जाये, जो कि नागा बहुल इलाकों को मिलाकर बनाया जाये जिसमें नागालैंण्ड, असम, मणीपुर, और अरूणाचल प्रदेश के हिस्से शामिल है। 1988 में एन.एस.सी.एन. भी दो समूहों में विभाजित हो गई एन.एस.सी.एन. (आई.एम.) एवं एन.एस.सी.एन. (खापलांग)। इन दोनों समूहों में नागालिम या ''ग्रेटर नागालैंड'' के निर्माण पर मतभेद थे। इन समूहों ने कई वर्षों तक नागालिम के सवाल पर संवाद किया।

असम में दो जनजातियों बोडो और कारबि उन जनजातियों में से हैं जिन्होंने 1980 के दशक के उत्तरार्ध से राजनीतिक गतिशीलता देखी। बोडो मुख्य रूप से कोकराझार, बक्सा, चिरांग और उदलगढ़ जिलों में रहते हैं जो कि असम और कारविस के मैदानी इलाकों में और कार्वी अंगलोंग के पहाड़ी जिलों में रहते हैं, जो कि असम के पहाड़ी क्षेत्र की स्वदेशी जनजातियों में से हैं। उनके मुख्य मुद्दे जो राजनीतिक लामबंदी से संबंधित हैं वे हैं सांस्कृतिक पहचान द्वारा सुरक्षा और राजनीतिक स्वायत्तता प्रदान करना। उनका तर्क है कि राजनीतिक स्वायत्तता उन्हें अपने क्षेत्र एवं उनकी पहचान की रक्षा में योगदान कर सकती है। बोडो की लामबंदी उनकी राजनीतिक स्वायत्ता एवं सांस्कृतिक पहचान के लिए 1980 के उत्तरार्ध में शुरू हुई थी जब आसू के नेतृत्व वाला विदेश–विरोधी आंदोलन समाप्त हो चुका था।

आसू और भारत सरकार के बीच असम समझौते पर हस्ताक्षर के बाद, बोडो ने महसूस किया कि आसू के नेतृत्व ने उनकी समस्याओं का समाधान नहीं किया, इस तथ्य के बावजूद कि उन्होंने इसके नेतृत्व वाले आंदोलन में भाग लिया था। संजीब बरूआ ने अपनी पुस्तक *''इंडिया अगेंस्ट इटसैल्फ''* (1999) में समझाया कि बोडो की अपनी पहचान असमिय से अलग ''बोडो'' के रूप में है। उन्होंने अपने लिये बोडोलैण्ड मातृभूमि की माँग की। आल इंडिया बोडो स्टूडेंट यूनियन ने 92 सूत्री चार्टर की माँग सरकार के सामने रखी। चार्टर में बोडो संस्कृति एवं भाषा की मान्यता की माँग थी, और उनकी शिक्षा एवं आर्थिक विकास के लिये अवसर प्रदान करने की माँग भी शामिल थी। बोडो की माँग के जवाब में भारत सरकार ने बोडो आबादी क्षेत्रों को राजनीतिक स्वायत्ता प्रदान करने के लिये 1993 में तीन समझौतों पर हस्ताक्षर किये। 1993, 2003 और 2020 में ये तीन समझौतो पर हस्ताक्षर किये गये थे। यद्यपि, असम के कार्बी आंगलोंग जिले में कारबी जनजातियों ने चिंता व्यक्त की 1950 से दी गई क्षेत्रीय स्वायत्ता के बारे में, वे अपनी माँगों के प्रति और मुखर हो गये एवं असम राज्य के भीतरएक राज्य की माँग की, हालांकि, उन्हें पहले से ही स्वायत्त परिषद के तहत् स्वायत्ता का लाभ मिला हुआ था।

पूर्वोत्तर भारत के अलावा अन्य क्षेत्रों में जनजातीय आंदोलन

पूर्वोत्तर भारत के अलावा अन्य क्षेत्रों में राजनीतिक लामबंदी के उदाहरण सामने आये हैं। लामबंदी आमतौर पर जनजाति जीवन के तरीकों के संघर्ष से उपजी है जिसमें सांस्कृतिक, सामाजिक, परंपरागत अर्थव्यवस्था और आधुनिकीकरण शामिल है।

आधुनिकीकरण के कारण जनजाति जीवन में विघटन पैदा हुआ है जिसमें उनकी जमीन से अलगाव एवं प्राकृतिक संसाधनों का शोषण भी शामिल है। विभिन्न क्षेत्रों में, जनजातियों की लामबंदी के कई मुद्दों पर ध्यान केंद्रित किया है जैसे कि, प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के कारण हुआ विस्थापन, वनों की कटाई, क्षेत्रीय पिछड़ापन, जनजाति पहचान या सामाजिक न्याय आदि। इस तरह की लामबंदी के उदाहरण कई राज्यों में है जैसे कि मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, गुजरात, राजस्थान इत्यादि। कई मामलों में, जनजातियों ने क्षेत्रीय स्वायत्ता की माँग की है, भारत के भीतर संघीय ढाँचे में राज्य का दर्जा प्राप्त करने की माँग की है। उनका तर्क है कि मौजूदा राज्य संरचना में, उनके द्वारा बसाये गए क्षेत्र पिछड़े रहते हैं, क्योंकि उनके प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग विकसित क्षेत्रों या वर्गों की सहायता के लिये किया जाता है। उनके क्षेत्रीय पिछड़ापन का समाधान उन्हें नये राज्यों के संदर्भ में स्वायत्ता प्रदान करके किया जा सकता है। जैसा कि आपने इस इकाई में पढ़ा होगा, झारखंड और छत्तीसगढ़ राज्यों का गठन 2000 में किया गया था जब जनजातियों ने अपने क्षेत्रों में राजनीतिक लामबंदी की थी। झारखंड राज्य के गठन से लगभग तीन दशक पहले तक, क्षेत्रीय स्वायत्ता और प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा प्राप्त करने के लिये झारखंड मुक्ति मोर्चा (जे.एम.एम.) द्वारा लामबंदी की गई थी। जे.एम.एम. की स्थापना एक बंगाली मार्क्सवादी ट्रेड यूनियन लीडर और संथाल जनजाति नेता शिबू सोरेन और कुर्मी महतो नेता बिनोद बिहारी महतो द्वारा की गई थी। उन्होंने जोर देकर कहा कि झारखंड राज्य का निर्माण इस क्षेत्र के पिछड़ेपन को समाप्त करने के लिये जरूरी होगा (टिलिन 2013)। छत्तीसगढ़ में, शंकर गुहा नियोगी ने 1978 में छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा की स्थापना की थी। इस संगठन के बैनर तले, छत्तीसगढ़ के शोषक के सवाल पर नियोगी ने लोगों को लामबंद किया था। छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा के नेतृत्व वाले आंदोलन में, जनजातियों ने गैर–जनजातियों के साथ पर्याप्त संख्या में भाग लिया था। इनमें अन्य बातों के अलावा असंगठित श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी का भुगतान शामिल था। मध्यप्रदेश में, गौंड और भील जनजातियों ने अपने क्षेत्र की उपेक्षा के खिलाफ आंदोलन किया था जिसमें गरीबी, भूखमरी, बेरोजगारी प्रमुख थी। ओड़ीशा में जनजाति आंदोलन हुआ जिनका मुद्त था बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन के साथ विस्थापन और आजीविका का नुकसान। 1993 में बॉक्साइट खनन इसका उदाहरण है। ये ज्यादातर जनजाति जिले कोरापुट कालाहांडी में स्थित है। भारत में कई क्षेत्रों में औद्योगिक परियोजनाओं को विरोध का सामना करना पड़ा। नियामगीरी में विरोध प्रदर्शन बहुराष्ट्रीय कंपनी पोस्को के खिलाफ ऐसा ही एक उदाहरण है।

14.5 क्षेत्रीय विकास और जनजातीय निवास क्षेत्र

जनजातियों की आबादी वाले क्षेत्रों में, क्षेत्रीय विकास का सवाल जनजाति जीवन और उनके विकास से संबंधित है। एक तरफ विकास की चुनौती है जनजाति इलाकों की जहाँ पर न्यूनतम जीवन यापन एवं उच्च मानव विकास को हासिल करना अनिवार्य है। जबकि दूसरी तरफ जनजातियों की पहचान एवं उनके रीति–रिवाजों से संबंधित है। लेकिन उनके बीच काफी क्षेत्रीय अंतर है। विकास के गतिरोध का विभिन्न क्षेत्रों में अलग असर हुआ है। उदाहरण के लिये, उत्तर–पूर्वी राज्यों में अन्य क्षेत्रों की तुलना में, मानव विकास के सवाल से कहीं बड़ी पहचान की राजनीति है। लेकिन, उत्तर–पूर्वी राज्यों में भी पहचान की राजनीति क्षेत्रीय विकास से जुड़ी हुई है। क्षेत्र में महत्वपूर्ण विकास हुआ है। ज्यादातर इस क्षेत्र के राज्य मानव विकास सूचकांकों के

संदर्भ में काफी अच्छा प्रदर्शन कर रहे हैं। मानव विकास सूचकांक में नालैण्ड एवं मिजोरम का सबसे अच्छा प्रदर्शन रहा है। मिजोरम राज्यों में सबसे अधिक उच्च दर वाले एच.डी.आई. में शामिल है। नागालैण्ड, त्रिपुरा, मेघालय मध्यम मानव विकास राज्यों की श्रेणी में है। जबकि जनजाति जनसंख्या वाले बहुल राज्यों मध्यप्रदेश, उड़ीसा, झारखंउ और छत्तीसगढ़ मानव विकास की श्रेणी में सबसे निचले स्तर पर है। भारत सरकार, राज्य सरकारों के साथ मिलकर इस अंतर को कम करने का प्रयास कर रही है। इसके लिये, संविधान में नये प्रावधानों को जोड़ा गया है। 2006 में, जनजातियों के अधिकारों की रक्षा के लिये भारत सरकार ने एक कानून पारित किया था। इसके अनुसार परंपरागत रूप से जनजातियों का वन एवं जमीन पर पूर्ण अधिकार है। किसी भी प्रकार के वन भूमि को बदलने के लिये जनजातियों की अनुमति लेनी आवश्यक है, यह वहाँ की ग्राम सभा या गाँव से अनुमति के पश्चात ही हो पाएगा। 2006 में भारतीय संसद ने कानून पारित किया जो जनजाति क्षेत्रों को आत्म या स्व–शासन सुनिश्चित करता है और उनके प्राकृतिक संसाधनों, पर उनका पूर्ण अधिकार सुनिश्चित करता है। इनमें पारंपरिक संसाधन, लघु–वन संसाधन, लघु–खनिज, लघु–जल निकाय शामिल हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

नोटः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर की जाँच इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) जनजाति आबादी के इलाकों की प्रमुख चुनौतियों क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) जनजाति राजनीति के प्रमुख तरीकों या पैटर्न की पहचान कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

14.6 सारांश

इस इकाई में हमने भारत में जनजातियों के प्रश्नों की चर्चा की है। यह इकाई जनजातीय जनसंख्या से संबंधित कुछ मौलिक सूचना प्रदान करती है। यह भारत में जनजातियों के अल्पविकास के सवाल की भी चर्चा करती है। जनजाति क्षेत्रों ने जाति–सांस्कृतिक और सामाजिक पहचान पर आधारित राजनीति के उदय को भी देखा है। उत्तर–पूर्वी राज्यों के मामलों में, जनजाति राजनीति पहचान की राजनीति

और राजनीतिक अर्थव्यवस्था से संबंधित है। उत्तर–पूर्वी क्षेत्रों से भिन्न क्षेत्रों के क्षेत्रीय विकास, प्राकृतिक संसाधनों के शोषण से रक्षा एवं पहचान के सवाल जनजातियों की लामबंदी को प्रभावित करते हैं। इसके अलावा, इन क्षेत्रों में गैर–जनजातियों की जनसंख्या भी काफी है। कुछ क्षेत्रों में, खासकर झारखंड और छत्तीसगढ़ में जनजाति एवं गैर–जनजाति ने अपने–अपने क्षेत्रों में विकास से संबंधित आंदोलनों में भाग लिया है।

14.7 संदर्भ

दूबे, एस.एम. (1982), इंटर–एथनिक अलायंस : ट्राइबल मूवमेंट्स एण्ड इंटिग्रेशन इन नोर्थ – ईस्ट इंडिया. इन सिंह. के. एस. (एड.) *ट्राइबिल मूवमेंट्स इन इंडिया.* वोल्यूम–1, मनोहर दिल्ली.

कुमार, आशुतोष. (2011). *रीथिंडिंग स्टेट पोलिटिक्स इन इंडिया : रीजन्स विदिन रीजंस.* राउटलेज. लंदन एण्ड न्यूयार्क.

टिलिन, लूईस. (2013). *रीमेकिंग इंडिया : न्यू स्टेट्स एण्ड देयर पोलिटिकल ओरिजिंस.* ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस. न्यू दिल्ली.

बरूआ, संजीव. (1999), *इंडिया अगेंस्ट इटसैल्फ : असम एन्ड द् पोलिटिक्स ऑफ नेशनलिटी.* ओ. यू. पी. दिल्ली.

बरूआ, संजीव. (2009). *बियोन्ड काउन्टर इन्सरजेंसी : ब्रेकिंग द् इमेजेज़ इन नोर्थईस्ट. इंडिया.* ओ.यू.पी. न्यू–दिल्ली.

हुसैन, मोनिरूल. (1987). *ट्राइबल मूवमेंट फोर आटोनोमस स्टेट इन असम.* ई.पी.डब्ल्यू, अगस्त 8. 1329–32.

फड़ानिस, उर्मिला. (1989), *एथनिक एन्ड नेशन बिल्डिंग इन साउथ–एशिया.* सेज प्रकाशन. न्यू दिल्ली.

शाह, घनश्याम. (2004). *सोशल मूवमेंट्स इन इंडिया : ए रिव्यू ऑफ लिटरेचर.* सेज प्रकाशन. न्यू–दिल्ली.

सिंह, के. एस. (1986). ''एग्रेरियन डाईमेंसन ऑफ ट्राईबल मूवमेंट्स.'' इन सिंह एस. के. (एड.). *एग्रेरियन स्ट्रगल इन इंडिया, आफ्टर इंडिपेंडेंट्स.* ओ.यू.पी. न्यू दिल्ली.

14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1) जनजातियों की महत्वपूर्ण विशेषताओं में उनकी प्रकृति के साथ नजदीकी, प्राकृतिक संसाधनों एवं जंगल पर निर्भरता, अलग प्रकार की संस्कृति एवं रीति–रिवाज, जैसे कि खाना, गाना, वेश–भूषा, शादी विवाह, जेंडर संबंध, पारंपरिक मुखिया का होना इत्यादि शामिल है।

2) जनजातियों की जनसंख्या भारत में विभिन्न क्षेत्रों में वितरित है जो कि तीन प्रमुख जोनों (क्षेत्रों) में विभाजित है – संविधान की पाँचवी और छठी अनुसूची के अनुसार, ज्यादातर जनजातियाँ खासकर उत्तर–पूर्वी राज्यों में छठी अनुसूची से

शासित होते हैं। जो अन्य क्षेत्रों में निवास करते हैं वे पाँचवी अनुसूची द्वारा शासित होते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

1) अनुसूचित जनजातियों की प्रमुख चुनौतियाँ है विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का दोहन एवं शोषण, उनके पारंपरिक स्थान से उनका विस्थापन, गरीबी एवं पिछड़ापन, तथा उनकी पहचान का संकट एवं राजनीतिक अर्थव्यवस्था का संकट है।

2) जनजातियों की राजनीति के तरीकों की क्षेत्रों के आधार पर पहचान की जा सकती है। पूर्वोत्तर भारत में जनजाति राजनीति का संबंध सांस्कृतिक पहचान, और राजनीतिक स्वायत्ता से है। ये आर्थिक पहलुओं के साथ भी जुड़े हुए हैं। पूर्वोत्तर के अलावा अन्य क्षेत्रों में, इसका संबंध क्षेत्र के पिछड़ेपन, प्राकृतिक संसाधनों के शोषण तथा क्षेत्र की स्वायत्ता से है। कुछ मामलों में, इसका संबंध जनजाति पहचान से संबंधित है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 15 नये सामाजिक समूह*

संरचना

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 मछुआरे

15.2.1 यंत्रीकरण एवं मछुआरे

15.2.2 मछुआरों का राजनीतिकरण

15.3 पारिस्थितिक और पर्यावर्णीय समूह

15.4 पारिस्थितिक और पर्यावरर्णीय आंदोलन

15.4.1 चिपको आंदोलन

15.4.2 नर्मदा बचाओ आंदोलन

15.4.3 शहर–आधारित पर्यावरण आंदोलन

15.5 एल.जी.टी.बी.क्यू. समूह

15.6 सारांश

15.7 संदर्भ

15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह जान सकेंगे –

- नये समूहों की विशेषताओं की पहचान करना,
- नये सामाजिक समूहों का अन्य समूहों से तुलना करना,
- मछुआरों की समस्याओं को जानना व समझना और उनकी राजनीतिक लामबंदी की प्रकृति को समझना,
- पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकी समूहों के राजनीतिकरण के मुद्दों की चर्चा करना, एवं
- एल.जी.बी.टी. समूहों के मुद्दों की चर्चा करना।

15.1 प्रस्तावना

आपने खण्ड 5 की अन्य इकाइयों में जाति, क्षेत्र, नृजातीयता, महिलाओं की पहचान की राजनीति के बारे में पढ़ा है। इस इकाई में आप उन सामाजिक समूहों के बारे में पढ़ेंगे जो इस श्रेणी में नहीं आते हैं। इन समूहों में अंतर करने के लिये हम उन्हें नये सामाजिक समूहों की श्रेणी में रख सकते हैं। वे एक या एक से अधिक सामाजिक समूह हैं। उनमें से कुछ सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के कारण उत्पन्न हुए है जो

* यह इकाई, इकाई 15 तथा 16, एमपीएसई–007 तथा इकाई 11 बीपीएससी–132 पर आधारित है।

कि विकासवादी नीतियों के कारण उत्पन्न हुए है, जैसे कि पर्यावरणीय और परिस्थितिकी समूह। इनमें से कुछ समूह पहले से ही विद्यमान है, लेकिन दूसरे समूहों जैसे जाति, धर्म या भाषा की तुलना में उनके मुद्दे काफी बाद में राजनीतिक और शैक्षिक चर्चा के विषय बने हैं। मछुआरे एवं एल.जी.बी.टी.क्यू. समूह ऐसे ही समूहों हैं। ये नये सामाजिक समूह को अक्सर एन.जी.ओ. या वे उन नेताओं संगठित किया जाता है जो राजनीतिक दल के सदस्य नहीं होते हैं। उन्हें हम गैर–राजनीतिक कह सकते हैं, क्योंकि वे किसी राजनीतिक दल से संबंध नहीं रखते हैं।

15.2 मछुआरे

मछुआरे वे समुदाय हैं जो आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से मछली पकड़ने और मत्स्य पालन से जुड़े हैं। इनका कार्य मछली पकड़ना, बेचना तथा उनका प्रसंस्करण और विपणण करना होता है। ये सदियों से मछली पकड़ने और बाजार में उन्हें बेचने का काम करते हैं। मछुआरे उन लोगों को मछली प्रदान करते हैं जो तटीय क्षेत्रों में रहते हैं तथा अन्य क्षेत्रों में रहने वाली मांसाहारी जनसंख्या को भी मछली प्रदान करते हैं। वे देश की अर्थव्यवस्था में भी महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। विशेषकर समुद्रतट पर स्थित राज्यों जैसे तमिलनाडु, केरल, आंध्रप्रदेश, ओड़ीशा, पश्चिम बंगाल, गोवा, अंडमान निकोबार, पांडिचेरी, महाराष्ट्र, गुजरात इत्यादि में। तटीय क्षेत्रों के अलाव ये देश के अन्य क्षेत्रों जैसे तालाब और बड़े टैंक, जो मछली पालन में शामिल हैं में भी पाये जाते हैं। मछुआरे लोग समरूप समूह नहीं हैं। वे विविध सामाजिक और सांस्कृतिक समूह हैं। जो तीन धर्मों से संबंधित हैं – हिन्दू, इस्लाम और ईसाई। और इनमें से एक बड़ा तबका सामाजिक रूप से हाशिये की जातियों से संबंधित है। उनका जहाजों के मालिक एवं श्रम रोजगार के आधार पर भी वर्गीकरण किया गया है। इस आधार पर मछुआरों को तीन समूहों में विभाजित किया जा सकता हैः 1) वे मछुआरे जिनके पास जहाज है या जहाजों के मालिक है तथा वे अपने परिवार के साथ कार्य करते हैं। 2) जो दूसरों को रोजगार देते हैं और उनके पास खुद का जहाज है तथा 3) वे मछुआरे जिनके पास जहाज नहीं हैं और वे दूसरों के जहाजों पर काम करते हैं। जिन मछुआरों के पास खुद का जहाज है, उनकी संख्या बहुत कम हैं। ज्यादातर मछुआरों के पास सामान्य जहाज हैं जो कि पारंपरिक और खराब गुणवत्ता के हैं। जो दूसरों को रोजगार देते हैं उनके पास खुद के जहाज होते है जो बेहद आधुनिक और गुणवत्ता वाले होते हैं। ट्रालर और बड़ी नावों के मालिक गैर मछुआरे जैसे व्यापारी, राजनीतिज्ञ तथा साहूकार भी होते हैं। मछली पकड़ना मौसम की स्थिति पर निर्भर करता है। जो कि ज्यादातर खराब होता है। मौसम की विषम परिस्थितियों के कारण मछुआरे बंदरगाह पर कार्य करते हैं। मत्स्य पालन के लिए उनका निवास समुद्र तट पर होता है तथा वे हमेशा प्राकृतिक आपदाऐं जैसे तूफान, बाढ़ और सूनामी का उनको भी सामना करते हैं। इन प्राकृतिक आपदाओं ने मछुआरों को सबसे ज्यादा नुकसान पहुँचाया है। उनके पास अपना रहने का घर नहीं है, जहाज नहीं है तथा जीवन यापन के लिये रोजगार नहीं है। 1999 में ओड़ीशा में चक्रवात आया था जिसने वहाँ के मछुआरों को नुकसान पहुँचाया था। 26 दिसंबर, 2004 की सूनामी ने दक्षिण एशिया के तटीय क्षेत्रों और दक्षिण–पूर्व एशिया के क्षेत्रों तबाह कर दिया था और वहाँ के जीवन और आजीविका को भारी नुकसान पहुँचाया था।

15.2.1 यंत्रीकरण और मछुआरे

परंपरागत रूप से मछली पकड़ने का काम छोटे, तथा हाथ के बने जाल से छिछले पानी में किया जाता था। भारत में मत्स्य पालन में मशीनीकरण की शुरुआत भारत–नार्वे प्रोजेक्ट 1953 से चालू हुई थी। इस प्रोजेक्ट में, मछलियों को पकड़ने में आधुनिक यंत्रों या उपकरणों का प्रयोग किया गय था। इसका उद्देश्य मछलियों को पकड़ने में वृद्धि करना तथा उत्पादन को बढ़ाना था। विकसित देशों जैसे कि जापान और यू.एस.ए. द्वारा सींगा की बढ़ती माँग के कारण मछली पालन में निचली तली वाले जहाज का इस्तेमाल बढ़ गया था। इस कारण शक्तिशाली गैर–मछुआरों द्वारा तटीय क्षेत्र में मछली पालन पर नियंत्रण हो गया। पारंपरिक मछुआरे मशीनीकृत मछली पकड़ने में असमर्थ थे। इस प्रकार मछुआरों को जीवन यापन की समस्याओं का सामना करना पड़ता था। सरकार ने भी निजी समूहों को ऋण अधिमान्य योजनाओं के माध्यम से समर्थन भी दिया। नई योजनाओं के लाभार्थी पारंपरिक रूप से धनी मछुआरे थे, जो संसाधनों के कारण उद्यमी गैर–मछुआरे बन गए थे। तकनीकी परिवर्तन का प्रभाव पहले से ही नाजुक पारिस्थितिक क्षेत्र की तथा पारंपरिक मछुआरों की आय में गिरावट भी देखा गया। इसके अलावा, सामान्य मछुआरों को उन लोगों के साथ असमान प्रतियोगिता करनी पड़ी, जो मत्स्य पालन में अधिक संसाधन युक्त और आधुनिक तकनीक का प्रयोग करते थे।

15.2.2 मछुआरों की राजनीतिक लामबंदी

मछुआरों का सबसे संगठित और उनकी निरंतर लामबंदी केरल राज्य में हुई है। सर्वप्रथम 1960 और 1970 के दशकों में मछुआरों का संगठन बनाने का प्रयास गाँव, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर भारत में हुआ था। सबसे पहले 1963 में केरल के क्विलोन जिले में मछुवारों की यूनियन बनायी गयी थी। 1980 के दशक तक एलेप्पी कोचीन, त्रिवेंद्रम और मालाबार जिलों में यूनियनों का गठन किया गया था। केरल में रोमन कैथोलिक चर्च और इन संगठनों के बीच सीधा संबंध था। पर यह 1980 और 1990 के दशकों में ही मछुआरों को इन संगठनों ने मुछआरों को लामबंद किया था। तटीय राज्यों जैसे कि तमिलनाडु, गुजरात, आंध्रप्रदेश और पश्चिम बंगाल में मछुआरों के संगठन थे। लेकिन केरल में ही ये बहुत अधिक सक्रिय एवं जुझारू थे। उनके मुद्दे इस प्रकार रहे हैं : मत्स्य प्रबंधन में उनकी भागीदारी की माँग, बड़े जहाजों एवं यंत्रीकृत नावों की प्रतिस्पर्धा से उनकी रक्षा करना, बड़े जहाजों पर रोक लगाना, मत्स्य पालन में संसाधनों की आबंटता, नाव, ऋण या अनुदान प्रदान करना, पुर्नस्थापन (यदि प्राकृतिक आपदा हो तो), एजेंटों, व्यापारियों तथा साहूकारों द्वारा शोषण को समाप्त करना। उनकी लामबंदी तभी संभव थी जब उनका संगठन मजबूत था एवं नेतृत्व भी सशक्त था। 1977 में कई जिला यूनियनों का विलय से *केरला लथीन कैथोलिक मालसिया थोजीलाली फेडरेशन* (के.एल.सी.एफ.एफ.) का गठन किया गया। उनका राज्य स्तर नेतृत्व पादरी प्रदान करते थे, हालांकि उनके गैर–पादरी नेता भी थे। मुस्लिम और हिन्दू मछुआरों का समर्थन प्राप्त करने के लिये इसका नाम बदल कर ''ऑल केरल स्वातंत्र मालसिया थोजीलाली फेडरेशन (AKSMTF) कर दिया गया। जिसे हम ''ऑल केरल इंडिपेडेंट केरल फेडरेशन'' भी कहते हैं। 1978 में दूसरे उदाहरण में गोवा के मछुआरों का संघ, तमिलनाडु, केरल एवं अन्य, राज्यों के संघों ने एक महासंघ का गठन किया, जिसे नेशनल फिशरमेनंस फॉरम (एनएफएफ) के नाम से जाना गया। इस संगठन को, खासकर केरल में चर्च के पादरियों, ननों, सामाजिक

कार्यकर्त्ता, बुद्धिजीवी शिक्षित कार्यकर्त्ताओं द्वारा नेतृत्व प्रदान किया जाता है। उनके साझा कार्यक्रमों में प्रदर्शन, धरना और भूख हड़ताल शामिल हैं। सरकार ने मछुआरे की समस्याओं को देखने के लिये आयोगों की नियुक्ति की थी।

अभ्यास प्रश्न 1

नोटः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर की जाँच इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) मछुआरों के प्रमुख मुद्दे कौन–कौन से हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत में मछुआरों की लामबंदी की प्रकृति के बारे में चर्चा कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

15.3 पारिस्थितिकी एवं पर्यावरणीय समूह

मछुआरों की तरह पर्यावरणीय और पारिस्थितिक समूह विविध समूह हैं। लेकिन उनके विपरीत, वे सभी भौगोलिक क्षेत्रों में पाये जाते हैं। भारत में पर्यावरण और पारिस्थितिक आंदोलन 1970 के दशक से प्रमुख हो गये हैं। इन आंदोलनों की अवधारणा किसी विशेष समूहों तक ही सीमित नहीं है। उनका विस्तार गाँवों, शहरी समुदायों, महिलाओं, आदिवासियों, किसानों, मध्यम वर्गों में हुआ है। पारिस्थितिकी एवं पर्यावरणीय आंदोलनों के प्रमुख मुद्दे इस प्रकार है : प्राकृतिक स्रोतों पर लोगों की पहुँच के अधिकार की रक्षा करना, भू अवक्रमण्ण की रोकथाम, प्राकृतिक स्रोतों के व्यावसायीकरण की रोकथाम, पर्यावरण प्रदूषण को रोकना, परिस्थितिक संतुलन का रखरखाव, तथा विस्थापितों का पुनर्वास इत्यादि मुद्दे शामिल हैं। ये मुद्दे भी लोगों को सम्मान, पर्यावरण अधिकार और उनके निर्णय निर्माण की क्षमता से संबंधित है। ये मुद्दे बड़े पैमाने पर प्राकृतिक स्रोतों की कमी के कारण होते हैं, जो कि पारिस्थितिक संतुलन को बिगाड़ रहे हैं। ऐसा अनवरत प्रयास ने देश के कई हिस्सों के लोगों को आकर्षित किया है गैर–सतत् विकास प्रतिकूल प्रभाव के कारण पारिस्थितिकी एवं पर्यावरीयण आंदोलनों और नागरिक समाज संगठनों का जन्म हुआ है।

15.4 पारिस्थितिक एवं पर्यावरण आंदोलन

भारत में पर्यावरण आंदोलनों की शुरुआत उस समय के उत्तर प्रदेश के गढ़वाल क्षेत्र में पहाड़ी क्षेत्रों, जो अब यह क्षेत्र उत्तराखंड राज्य में स्थित है, से 1973 में चिपको आंदोलन के साथ हुई थी। वास्तव में 1970 और 1980 के दशकों के बीच में भारत में वन अधिकार और जल के मुद्दों पर कई प्रकार के संघर्ष हुए हैं। इसने पर्यावरण संबंधी कई अन्य मुद्दों को भी उठाया जैसे कि वन संपदा पर समुदायों का अधिकार, पर्यावरणीय प्रोजेक्ट या योजनाओं जैसे कि बाँध बनाना, विस्थापन और पुनर्स्थापन के मुद्दे, इत्यादि। भारतीय पर्यावरणीय आंदोलन औपनिवेशिक राज्य द्वारा अपनाये गये विकास के मॉडल का आलोचक रहा है। भारत में पर्यावरण आंदोलन के संदर्भ में, स्वतंत्रता के बाद राज्य लोगों की जरूरतों को पूरा करने में असफल रहा है। इसने आधुनिक पूँजीवादी एजेंडे की वकालत करना जारी रखा जिसके कारण पर्यावरण का विनाश हुआ। परिणामस्वरूप गरीबी बढ़ी और ग्रामीण समुदायों का हाशिए कारण हुआ था। गाडगिल और गुहा (1998) ने भारत में दृष्टि, विचारधारा और रणनीति पर आधार पर्यावरणीय आंदोलनों के भीतर चार व्यापक किस्मों की पहचान की जो भारत में है : पहले प्रकार वे हैं जो गरीबों को न्याय सुनिश्चित करने के लिये नैतिक आवश्यकता पर जोर देते हैं। मुख्यतः गाँधीवादी इस विचार से संबंधित हैं। दूसरा विचार संघर्ष के माध्यम से अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को समाप्त करने की आवश्यकता पर बल देते हैं। मार्क्सवादी ज्यादातर इस किस्म के अनुयायी हैं। तीसरी और चौथी किस्म पुनर्निमाण की वकालत करती हैं – अर्थात् किसी विशेष संदर्भ और समय में उपयुक्त तकनीकों को नियोजित करना। वे वैज्ञानिकों या समुदायों के सहज प्रयासों को प्रतिबिंवित करते हैं, जिनमें ग्रामीण स्तर पर स्थानीय सामुदायों को पर्यावरण के अनुकूल कृषि पद्धतियों को लक्ष्य अपनाने तथा उनके अधिकारों की रक्षा का प्राप्त हो। यह खंड भारत में कुछ परिस्थितिकी और पर्यावरणीय आंदोलनों पर चर्चा करता है। इनमें से चिपको आंदोलन, नर्मदा बचाओं आंदोलन और प्रदूषण के खिलाफ आंदोलन जो दिल्ली में हुए थे, भी शामिल हैं।

15.4.1 चिपको आंदोलन

चिपको आंदोलन की शुरुआत 1970 के दशक में उत्तराखंड जो कि पहले उत्तर प्रदेश में था, हुई थी। भारत में इसे पर्यावरण आंदोलन का पहला उदाहरण था। चिपको की उत्पत्ति 1973 में हुई थी। चिपको का मतलब है चिपक जायेंगे। 1973 की शुरुआत में वन विभाग ने दशोली ग्राम स्वराज्य संघ (डीजीएसएस) को एश वृक्ष आबंटन करने से मना किया। यह एक स्थानीय कोपरेटिक संगठन था जोकि चमोली जिले में कार्यरत था। यह कृषि उपकरणों के निर्माण से संबंधित था। लेकिन वन विभाग ने एश ट्री को काटने की मंजूरी एक प्राइवेट कंपनी साइमंडस कंपनी को दी थी। इस घटना के विरोध में डीजीएसएस लोगों को लामबंद किया। वे लकड़ियों के ढोने वाले ट्रकों के सामने वे लेट गये और उन्होंने लकड़ियों के डिपो को भी जला दिया गया था। आंदोलन के नेता ने विरोध करने के तरीके सही नहीं पाया चंदी प्रसाद भट्ट तथा उन्होंने यह सुझाव दिया कि लोगों को पेड़ों से चिपक जाना चाहिये। इस प्रकार से ''चिपको'' शब्द का जन्म हुआ था। यह आंदोलन अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी चिपको आंदोलन के नाम से जाना जाने लगा। चिपको आंदोलन की प्रमुख माँगें इस प्रकार थी :– व्यावसायिक उद्देश्य के लिये पेड़ों की कटाई पर संपूर्ण रोक लगाना, लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं के आधार पर परंपरागत अधिकार को मान्यता दी जानी

चाहिये, वनों के प्रबंधन के लिये ग्राम समितियों का गठन करना, तथा वन संबंधित उद्योगों के विकास और कच्चे माल की उपलब्धता होनी, इसके लिए धन एवं तकनीक की व्यवस्था होनी और स्थानीय पारिस्थितियों को देखते हुए वनीकरण को प्राथमिकता देना इस विरोध प्रदर्शन के तरीके को देखते हुए प्राइवेट कंपनी को एश ट्री का दोहन करने से रोका गया एवं वहाँ से इसे हटाया गया। इस सफलता के बाद यह आंदोलन पड़ोसी क्षेत्रों तक भी फैल गया था। चिपको आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी काफी ज्यादा थी। इसने महिलाओं को शराब बंदी के खिलाफ आंदोलन चलाने को भी लामबंद किया और उन्हें समर्थन भी मिला। सुंदरलाल बहुगुणा जैसे नेता की बदौलत चिपको आंदोलन में लोग लामबंद हुए, और यह आंदोलन बहुत तेजी से आगे बढ़ा।

15.4.2 नर्मदा बचाओ आंदोलन

पश्चिम भारत के तीन प्रमुख राज्यों गुजरात, मध्यप्रदेश एवं महाराष्ट्र में नर्मदा नदी परियोजना से संबंधित आंदोलन पर्यावरण आंदोलन का सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण है। यह आंदोलन विकास मॉडल की राजनीति का ऐसा महत्वपूर्ण पहलू हैं जिससे पारिस्थितिकी और पर्यावरण की समस्याएं जन्मी। भारत में और कोई दूसरा विकास नहीं है जिसने पर्यावरण किवास की समस्याओं पर इतनी तीव्रता से ध्यान केंद्रित किया हो, और जिसमें जिसने सूचित बहस और राजनीतिक लामबंदी भारी जमीनी सक्रियता बढ़ी हो जितनी इस परियोजना में। नर्मदा बचाओ आंदोलन (एन.बी.ए.) ने भारत में सवांर्गीण विकास या वैकल्पिक विकास के राजनीतिक बहस में योगदान दिया है। सरदार सरोवर परियोजना जो एक अंतर्राज्यीय बहु उद्देशीय परियोजना है, और इसमें दो बड़े प्रोजेक्ट शामिल है : गुजरात सरदार सरोवर परियोजना और नर्मदा सागर परियोजना जो कि मध्यप्रदेश में है। यह दुनिया का सबसे बड़ा एकल नदी घाटी परियोजना है जो कि विश्व की सबसे बड़ी मानव निर्मित झील है।

गुजरात राज्य सरकार ने परियोजना की शुरुआत की क्योंकि गुजरात भारत का सबसे खराब जल–भूभाग में से एक था। और यहाँ पर घरेलू, वाणिज्यिक कृषि और औद्योगिक जरूरतों के लिये पानी की भारी कमी थी। इसके अलावा राज्य ने सन् 1985–88 में सबसे खराब सूखे को देखा है, जिसने इस परियोजना को लागू करना आवश्यक हो गया। हालांकि आलोचकों के अनुसार, यह ''दुनिया का सबसे खराब मानव–निर्मित पारिस्थितिक आपदा'' थी। और इसे अलाभकारी माना गया है। इस परियोजना के आलोचकों ने आरोप लगाया कि काफी स्पष्ट और खतरनाक है जलाशय 37000 हेक्टेयर भूमि को डुबो देगा जिसमें 11000 हेक्टेयर भूमि जंगल के रूप में वर्गीकृत है। यह 248 गाँवों के लगभग एक लाख लोगों को विस्थापित करेगा, जिसमें 19 गाँव गुजरात के, 36 महाराष्ट्र के और 193 मध्य प्रदेश के हैं। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि मूल रूप से नर्मदा परियोजना को 161 फीट ऊँचे बाँध के तौर पर सिंचाई परियोजना के रूप में विचार किया गया था। बाद में पाया गया कि इसका पानी तकनीकी तौर पर प्रयोग में लाया नहीं जा सकता है और इसे एक बहु–उद्देशीय बाँध बना दिया जाना चाहिये जिसकी ऊँचाई 455 फीट है। इसके परिणामस्वरूप, राज्य सरकार ने वित्तिय सहायता की तलाश शुरू कर दी थी, जिसके श्रौतों में न केवल केन्द्र सरकार बल्कि विश्व बैंक भी शामिल है।

1988 में, नर्मदा बचाओ आंदोलन (एनबीए) ने नर्मदा घाटी विकास परियोजना को रोकने की माँग की। सितंबर 1989 में, 50,000 से अधिक लोग घाटी में एकत्र हुए पूरे भारत से और ''विध्वंसक विकास'' के खिलाफ लड़ने की कसम खाई। एक साल बाद

हजारों गाँव वाले पैदल चलकर मध्य प्रदेश के एक छोटे से कस्बे में ठहरे और अपने घरों से बाहर जाने के बजाय वहीं डूब जाने की कसम खाई। काफी दवाब के बाद विश्व बैंक को स्वतंत्र समीक्षा समिति गठित करने को मजबूर हुआ, जिसे मोर्स आयोग कहा जाता है। इसने 1992 में मोर्स रिपोर्ट प्रकाशित की थी। इस रिपोर्ट में नर्मदा बचाओं आंदोलन के सभी मुद्दों को समर्थन किया गया । दो महिने बाद, विश्व बैंक ने पामेला कोक्स समिती को भेजा। इसने भी मोर्स समिति के प्रस्तावित सुझावों को समर्थन दिया अर्थात् इसने किसी मजबूत सुझाव को प्रस्तावित किया। आखिरकार, अंतर्राष्ट्रीय हंगामे के कारण जो कि रिपोर्ट के द्वारा बनाया गया, सरदार सरोवर परियोजना से विश्व बैंक पीछे हट गया। इसके जवाब में गुजरात सरकार ने 200 मिलियन डालर जुटाने का निर्णय लिया और परियोजना के साथ आगे बढ़ने का फैसला किया। इस परियोजना से संबंधित कई मुद्दे अभी हल होना बाकी है। लेकिन, जो सबसे महत्वपूर्ण बात है वह यह है कि इस आंदोलन की कई मामलों में सफलता मिली है। इन सफलताओं में शामिल है जैसे सन् 1993 में सरदार सरोवर परियोजना से विश्व बैंक का बाहर हो जाना, सन् 1994–1999 के बीच सरदार सरोवर के निर्माण कार्य पर रोक लग जाना और सन् 1999–2001 में महेश्वर डाम से विदेशी निवेशी की वापसी।

नर्मदा बचाओ आंदोलन इस बात में काफी अलग है कि इसने लोगों के अधिकारों के महत्व को रेखांकित किया, जिसने सूचना का अधिकार को लोगों के दवाब के कारण मानना पड़ा। इसने देश के तमाम लोगों को लामबंद किया और सरकार को जन–विरोधी नीतियों को वापस लेने को मजबूर किया। इन जन–विरोधी नीतियों की वजह से लाखों आदिवासी लोग अपने घरों से विस्थापित हो रहे हैं तथा इसका उनके जीवन–यापन पर काफी असर पड़ रहा है। इसने बहुत अधिक अंतर्राष्ट्रीय समर्थन भी प्राप्त किया था। इसने अहिंसावादी विरोध का तरीका अपनाया और गाँधीवादी दृष्टिकोण का सहारा लेते हुए सकारात्मक कार्य किया। नर्मदा बचाओ आंदोलन ने भारत में पर्यावरण आंदोलन के इतिहास में अपनी अलग पहचान बनाई है। लेकिन, सरकार के ढुलमुल रवैये के कारण बजूद भी नर्मदा बचाओ आंदोलन नागरिक समाज संगठनों के प्रयत्नों से चल रहा है।

15.4.3 शहर–आधारित पर्यावरण आंदोलन

हाल के दिनों में औद्योगिकरण के कारण पर्यावरण प्रदूषण हुआ है वह नगारिक समाज संगठनों स्वयं सेवी संगठनों, संबंधित व्यक्ति, विशेष रूप से वकीलों, वैज्ञानिकों, पर्यावरणविद और सामाजिक कार्यकर्त्ता इत्यादि द्वारा सामूहिक कार्यवाही का ध्यान केन्द्रित बन गया है। उन्होंने न्यायपालिका से हस्तक्षेप की माँग की और आधुनिकीकरण प्रक्रिया के कारण होने वाले प्रदूषण की ओर राज्य का ध्यान आकर्षित किया। तथापि प्रदूषण के खिलाफ सामूहिक कार्यवाही का मुख्य ध्यान शहरी क्षेत्रों में रहा है। भोपाल स्थित यूनियन कार्बाइड जैसे एम.एन.सी. में गैस रिसाव जैसे कुछ त्रासदी, पूर्व सोवियत संघ में चारनोबिल जहाँ हजारों लोग मारे गये थे प्रदूषण ने औद्योगीकरण के नकारात्मक प्रभाव का लोगों में चिंता पैदा की।

हालांकि 1990 के दशक में पर्यावरण प्रदूषण को लेकर चिंता बढ़ी है, लेकिन, 1960 के दशक में पर्यावरण प्रदूषण के विनाशकारी प्रभाव के बारे में जागरूकता बढ़ने लगी। भारत के सभी प्रमुख शहर तीव्र वायु, जल और अन्य प्रकार के प्रदूषणों का सामना कर रहे हैं। लोगों का ग्रामीण इलाकों से शहरी इलाकों की तरफ लगातार पलायन,

उनके तंग गलियों में निवास स्थान जो प्रदूषित लघु उद्योगों के साथ हैं, गाड़ियों की संख्या में लगातार वृद्धि होना, गैर–योजनाकृत शहरों का विस्तार, खुले सीवर (ड्रेनेज) इत्यादि ने खतरनाक प्रदूषण के स्तर को बढ़ावा दिया है। इस प्रदूषण ने लोगों को कई बीमारियों के लिए अतिसंवेदनशील बना दिया है।

स्वतंत्रता के बाद कई वर्षों तक राज्य की नीतियों में पर्यावरण की सुरक्षा को महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिला। नेहरूवादी मॉडल ने प्रदूषण के बारे में ज्यादा चिंता किये बिना औद्योगीकरण पर जोर दिया। हालांकि 1976 में एक संविधानिक संशोधन द्वारा पर्यावरण की रक्षा और सुधार और जंगल की सुरक्षा तथा देश के वन्यजीवों की रक्षा की आवश्यकता पर बल डाला गया। जंगलों, झीलों, नदियों एवं वन्यजीवों के प्रति दया करने को नागरिकों का मौलिक कर्तव्यों पर बने। अगले दशकों में, राज्य ने 1981 में वायु अधिनियम और पर्यावरण संरक्षण अधिनियम जैसे कानून वायु प्रदूषण और पर्यावरण संरक्षक को रोकने के लिये पारित किये हैं। न्यायपालिका लोगों के अधिकारों का रक्षक बन गया है जिसमें उनकी सुरक्षा और पर्यावरण संरक्षण भी शामिल है। जनहित याचिका (पी.आई.एल.) जनता के अधिकारों के विषय में एक महत्वपूर्ण हथियार के रूप में आया है। ऐसा कार्यपालिका और विधायिका लोगों की समस्याओं की उदासीनता के हुआ है। इन याचिकाओं द्वारा लोग मुद्दों पर राज्य के हस्तक्षेप की माँग करते हैं। न्यायपालिका के हस्तक्षेप के बाद राज्य ने पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के लिये कुछ जरूरी कदम उठाये हैं। पर्यावरण की रक्षा के लिये न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर, कुलदीप सिंह और एडवोकेट (वकील) एम.सी. मेहता का काफी महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

दिल्ली दुनिया का सबसे प्रदूषित शहर है। नागरिक समाज संगठनों द्वारा पर्यावरण प्रदूषण के संबंध में तीन प्रकार के मुद्दों को उठाया है। ये मुद्दें हैं : वाहनों द्वारा औद्योगिक प्रदूषण एवं यमुना नदी में बढ़ता जल प्रदूषण, हाल के दिनों में निजी वाहनों की संख्या में बढ़ोतरी। पर्यावरण द्वारा बच्चों और बूढ़े जो कई रोग पैदा होना। न्यायालय के आदेश, जो एक जनहित याचिका का परिणाम था, के अनुसार सरकार ने सी.एन.जी. वाहनों को चालू करने और सभी निजी वाहनों की प्रदूषण जाँच को अनिवार्य कर दिया। सी.एन.जी. वाहनों की शुरुआत से शहर में पर्यावरण प्रदूषण में कमी आई है। इसी तरह दिल्ली सरकार ने प्रदूषणकारी उद्योगों को शहर से बाहर स्थानांतरित कर दिया और यमुना नदी का सफाई अभियान शुरू किया। प्रदूषित कारखानों को बंद करने और उद्योगों पर रोक लगाने से शहर में श्रमिकों में अशांति पैदा कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि पुलिस को फायरिंग (गोली) करनी पड़ी जिससे एक मजदूर की मौत हो गई थी। असल में, यह अनियोजित विकास नीति से संबंधित है। गाँवों से शहरों की ओर पलायन अपरिहार्य है। जब तक कि पलायन करने वाली आबादी को अवशोषित करने के लिये कुछ उपाय नहीं अपनाये जाते और बढ़ते वाहनों के प्रयोग पर रोक नहीं लगाई तो ऐसा लगता है कि पर्यावरण प्रदूषण हमेशा बरकरार रहेगा।

15.5 एल.जी.बी.टी.क्यू. समूह

एल.जी.बी.टी.क्यू. (लेसबियंस, गेज, बाई सेक्सुल्स, ट्रांसजेंडर तथा क्वीर्स/ जो अपनी लैंगिक पहचान पर प्रश्न चिंह लगाते हैं)। समाज के वे वर्ग हैं जो हाशिये पर हैं जिनकी समाज में स्थिति उनके यौन अभिविन्यास के आधार पर देखी जाती है। कुछ

साल पहले तक, राजनीतिक एवं शैक्षिक जगत का ध्यान उनकी तरफ नहीं था। ट्रॉसजेंडर व्यक्तियों (संरक्षण का अधिकार) के विधेयक 2016 के अनुसार ट्रॉसजेंडर वह व्यक्ति है जो (ए) न तो पूर्ण महिला है या पुरूष है, (बी) महिला एवं पुरूष का संयुक्त रूप या (सी) ना ही महिला और ना ही पुरूष। उस व्यक्ति का जेंडर जन्म के आधार पर निर्धारित नहीं होता है, और वे ट्रांस–मेल तथा ट्रॉस–विमेन की श्रेणी में आते हैं। ट्रॉसजेंडर व्यक्ति उनके जेंडर की वजह से अपमान सहन करते हैं। वे सामाजिक लांक्षन का सामना करते हैं, सरकारी या निजि संस्थानों में नौकरी लेने में उसने साथ हमेशा भेदभाव होता है और उनके परिवार में भी उन्हें अलग तरीके से देखा जाता है। एल.जी.बी.टी.क्यूज. समूह भारत में आपस में एकजुट हो रहे हैं तथा उनके ऊपर हो रहे भेदभाव को रोकने के लिए सरकार से कानून बनाने की माँग कर रहे हैं और उन्हें समाज में उचित सम्मान एवं प्रतिष्ठा की माँग कर रहे हैं। आत्म सम्मान की पहचान के अधिकार की माँग उनकी प्रमुख माँगों में से हैं।

उनके आंदोलन के जवाब में, त्रुची शिवा से दिसंबर 12, 2004 को राज्य सभा में एक निजी सदस्य विधेयक प्रस्तुत किया था। इस विधेयक को आम सहमति से पारित कर दिया था। 2 अगस्त, 2016 को, केन्द्रिय मंत्री थावरचंद गहलोत ने ट्रॉसजेंडर व्यक्तियों (के अधिकारों की रक्षा संबंधित) बिल प्रस्तुत किया था। यह बिल ट्रॉसजेंडरों के विरूद्ध हो रहे भेदभाव जो विभिन्न क्षेत्रों में जैसे जिसमें उनको सरकारी नौकरियों से इंकार करने, शिक्षा के रोजगार, स्वास्थ्य सेवाओं, तथा सार्वजनिक स्थानों को रोकने की बात करता है। यह विधेयक ट्रॉसजेंडरों के कहीं भी घूमने–फिरने, रहने, बसने, किराये पर रहने, संपत्ति के अधिकार इत्यादि की भी बात करता है। यह विधेयक ट्रॉसजेंडरों के आत्म–पहचान की भी बात करता है। यह ट्रॉसजेंडरों पर निर्भर करेगा कि वे अपनी पहचान पुरूष, महिला या ट्रॉसजेंडर के रूप में करना चाहते हैं। यह विधेयक ट्रॉसजेंडरों के लिए कल्याणकारी नीतियां बनाने के लिये सरकार को भी झुकाव देता है।

अभ्यास प्रश्न 2

नोटः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर की जाँच इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) भारत में पर्यावरण संबंधी प्रमुख मुद्दों को रेखांकित कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत में शहर आधारित पर्यावरण आंदोलनों की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिये।

.....

.....

.....

3) एल.जी.बी.टी.क्यूज की विशेषताओं की पहचान कीजिये।

.....

.....

.....

.....

15.6 संदर्भ

गाडगिल, माधव और गुहा, रामचंद्र (1998), *टूवार्डस ए परसपेक्टिव ऑफ एनवायरनमेंट मूवमेंट इन इंडिया,* इन जर्नल ऑफ सोशल वर्क, 59 (1)।

गुहा, रामचंद्र – *द् अनक्वाइट वड्स : इकोलोजीकल चेंज एण्ड पीजेंट रेजिस्टेंस इन द् हिमालय,* यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।

कूरियन, प्रोफ. जॉन, (2005), इंटव्यू – ''गुड ओकेजन फोर चेंज'' *इन फ्रंटलाइन,* फरवरी, 11।

कृष्णकुमार, आर. (2005), ''एन ऑनगोइंग ट्रेजडी'', *इन फ्रंटलाइन,* फरवरी, 11।

मोहन्ती, एम. मुखर्जी, पी. एन. एण्ड रोर्नकिस्ट ओले (1998), *''पीपूल्स राइट्स : सोशल मूवमेंट्स एण्ड द् स्टेट इन द् थर्ड वर्ल्ड''* सेज प्रकाशन, न्यू दिल्ली।

शाह, घनस्याम, (2004), *सोशल मूवमेंट्स इन इंडिया : ए रिव्यू ऑफ लिटरेचर,* सेकन्ड एडिसन, सेज प्रकाशन, न्यू दिल्ली।

श्रीधर, वी, (2015), ''लिविंग ऑन द् एज'' *इन फ्रंटलाइन,* फरवरी 11।

विश्वनाथन, एस (2005) ''फिशरमैन एट सी', *इन फ्रंटलाइन* फरवरी 11।

15.7 सारांश

समाज मे कुछ समूह हैं जिन्हें हम नये सामाजिक समूह कहते हैं। ये समूह अन्य सामाजिक समूहों जो जाति, भाषा, धर्म एवं क्षेत्र के आधारित होते हे। पर निर्भर करता है। भारत में ऐसे सामाजिक समूह हैं जैसे मछुआरे, पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण समूह तथा एल.जी.बी.टी.क्यू. समूह। ये सभी समूह कुछ या सभी कारणों से व नए समूह कहलाते हैं : उन्हें जाति, भाषा, धर्म आधारित इत्यादि अन्य समूहों की भांति राजनीतिक एवं शैक्षिक पहचान बाद में मिली। समाज में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के बाद ये समूह भी मजबूत होकर उभरे हैं। कुछ विद्वान उनके सामूहिक कार्यों को नये सामाजिक आंदोलन कहते हैं। 1990 के दशक के बाद इन समूहों की लामबंदी राजनीति एवं शैक्षणिक बहस का मुद्दा बन गई है। हालांकि इनमें से कुछ बहुत पहले से ही लामबंद थे। भारत के तटीय इलाकों में, खासकर केरल में मछुआरों ने आंदोलन का सहारा लिया। क्योंकि उनमें से ज्यादातर वंचित वर्गों से थे, उन पर यंत्रीकृत मत्स्यपालन का बुरा असर पड़ा था, प्राकृतिक आपदा एवं निजी कंपनियों के साथ प्रतिस्पर्धा भी इसका एक कारण था। उनकी प्रमुख माँगों में, मत्स्य प्रबंधन में उनकी सहभागिता, बड़े जहाजों को हटाना, मछली पालन में सुविधाओं एवं संसाधनों की उपलब्धता, साहूकारों से सुरक्षा, मध्यम व्यक्तियों एवं प्राकृतिक आपदा इत्यादि से सुरक्षा करना शामिल थी। पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिक आंदोलन का प्रमुख जोर लोगों

के अधिकारों से संबंधित है। खासकर प्राकृतिक संसाधनों पर उनका अधिकार, भूमि के क्षरण पर रोक, प्राकृतिक संसाधनों के व्यावसायीकरण पर रोक और पर्यावरण प्रदूषण पर रोक, पर्यावरण संतुलन, विस्थापित व्यक्तियों का पुनर्स्थापन इत्यादि। इन आंदोलनों के मुख्य विषय थे। ये आंदोलन मुख्यतः गैर–राजनीतिक होते है। पर्यावरण एवं पारिस्थितिक आंदोलनों ने नागरिक समाज संगठनों को बढ़ावा दिया है। एल.जी.बी.टी क्यूज. वंचित समूह भी हैं। जिनका सामाजिक स्तर उनकी सामाजिक हैसियत से तय किया जाता है। हाल ही के दिनों में ये राजनीतिक एवं शैक्षिक विषय का अंग बन गये हैं।

15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1) मछुआरों के प्रमुख मुद्दे इस प्रकार हैं :– मत्स्य प्रबंधन में मछुआरों की सहभागिता, उनकी मछलियों की बिक्री एवं प्रोसेसिंग, बड़े जहाजों का विरोध, मत्स्य पालन में संसाधनों की उपलब्धता, तथा एजेंटों, व्यापारियों और साहूकारों द्वारा शोषण से रक्षा करना इत्यादि।

2) 1990 के दशक से मछुआरों का आंदोलन विशेषकर केरल आम बन गया था। उनका प्रमुख बिंदु मत्स्य पालन में यंत्रों में प्रयोग, असमान प्रतिस्पर्धा और उनके लिए कल्याणकारी नीतियों की जरूरत, इत्यादि रहा है। मछुआरों को उनके नेताओं और उनके संगठनों का एकजुट किया था। सरकार ने प्रायः मछुआरों के आंदोलनों पर कई आयोगों का भी गठन करके प्रतिक्रिया की ताकि वे उनकी समस्याओं के बारे में उचित सुझाव दे सके और कुछ कदम उठाये जा सके।

अभ्यास प्रश्न 2

1) पर्यावरण संबंधी मुद्दों में प्राकृतिक संसाधनों का शोषण एवं उनका क्षरण को रोकना, प्राकृतिक संसाधनों के ऊपर लोगों के अधिकारों की रक्षा, प्राकृतिक संसाधनों का विकास, वायु प्रदूषण की रोकथाम के लिए कदम उठाना, प्राकृतिक संसाधनों के व्यावसायीकरण से रोकना, विकास के लिये विस्थापित किये गये लोगों का पुनर्स्थापन, नीति निर्माण में लोगों का प्रतिनिधित्व, पर्यावरण की सुरक्षा से संबंधित इत्यादि।

2) शहर–आधारित पर्यावरण आंदोलन का प्रमुख कारण है शहरीकरण एवं औद्योगीकरण। उनकी अगुवाई सामान्य तथा नागरिक समाज संगठनों द्वारा की जाती है। तथा वकीलों, वैज्ञानिकों एवं बुद्धिजीवियों द्वारा भी उनकी अगुवाई की जाती है। उनका प्रमुख लक्ष्य पर्यावरण प्रदूषण को रोकना है। शहरों में पर्यावरण को रोकने के लिये न्यायालय ने काफी निर्णायक भूमिका निभाई है।

3) समाज के वंचित समूह होने के कारण एल.जी.बी.टी.क्यू. को सामाजिक भेदभाव एवं लांक्षन का सामना करना पड़ता है। उनके सामाजिक स्तर का निर्धारण उनके सेक्युअल आरियंटेशन से किया जाता है। कुछ समय पूर्व तक ये शैक्षिक एवं राजनीतिक बहस का हिस्सा नहीं थे। उनके राजनीतीकरण के कारण ही एल.जी. बी.टी.क्यूज. सार्वजनिक नीतियों का हिस्सा बन गये हैं।

ग्रन्थसूची

अरोड़ा, बलवीर एवं वर्नेय, डोगलास, 1995, मल्टीपल आईडेंटीज इन ए सिंगल स्टेटः इंडियन फेडरेलिज्म इन ए कम्पेरेटिक परसपेक्टीव, न्यू दिल्ली – कोनार्क।

अरोड़ा, बलवीर, कैलास के. के., सक्सेना रेखा, एवं सुसान, एव. खाम खान, – इंडियन फेडरेलिज्म इन के. सी. सूरी एवं अचिन विनायक इंडियन डेमोक्रेसी आई सी एस एस आर रिसर्च सर्वे एन्ड, एक्सरलोरेरास इन पोलिटिकल साइंस खंड 2 दिल्ली ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

आमन्ड, जी. ए. कोलमैन, जे. एस. (एड़) (1960). द् पोलिटिकस ऑफ डवलपिंग एरियाज, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।

आहुजा, अमित, 2019 – मोबिलाइजिंग द् मारजिनेलाइज्डः एथिनीक पार्टिज विदाउट स्थनिक मूवमेंट्स, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली।

ऑस्टिन, ग्रेनविल – 1966 – इंडियन कंस्टीट्यूशन कोर्नरस्टोन, ऑफ ऐ नेरान, दिल्ली ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

ऑस्टिन, ग्रेनविल – 1966 – इंडियन कंस्टीट्यूशन कोर्नरस्टोन, ऑफ ऐ नेरान, दिल्ली ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

कुमार, आशुतोष, (2011), रीथिंडिंग स्टेट पोलिटिक्स इन इंडिया रीजन्स विदिन रीजंस, राउटलेज, लंदन एण्ड न्यूयार्क।

कुमार, राधा, 2002 – द् हिस्ट्री ऑफ डूईंगः एम इलस्ट्रेड अकाउन्ट ऑफ मूवमेंट्स फोर वूमेंस राइट्स एण्ड फेमिलिज इन इंडिया, 1800–1990, काली फोर वूमेन, न्यू–दिल्ली।

कोठारी रजनी, (1970), पोलिटिक्स इन इंडियाः ओरियंट ब्लैक स्वान. दिल्ली।

कोहली, अतुल (2009), डेमोक्रेसी एण्ड डवलपमेंट इन इंडियाः फ्रोम सोशलिज्म टू प्रो–बिजनेस, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, नई–दिल्ली।

गाडगिल, माधव और गुहा, रामचंद्र (1998), टूवार्डस ए परसपेक्टिव ऑफ एनवायरनमेंट मूवमेंट इन इंडिया, इन जर्नल ऑफ सोशल वर्क, 59 (1)।

गुहा, रामचंद्र – द् अनक्वाइट वड्सः इकोलोजीकल चेंज एण्ड पीजेंट रेजिस्टेंस इन द् हिमालय, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।

चटर्जी, पार्था, 1998, 'इंट्रोडक्शन' इन पार्थ चटर्जी (एड.) स्टेट एण्ड पोलिटिक्स इन इंडिया, दिल्ली ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

जैफरलो, (2003) – इंडियाज साईलेंट रिवोल्यूशनः राइज ऑफ लो कास्ट इन नोर्थ इंडियन पोलिटिक्स, परमानेंट ब्लैक, न्यू–दिल्ली।

जैफ़रलो, क्रिस्टोफ, कुमार संजय (2009) राइज़ ऑफ द प्लेबियंस? द चेंजिंग फेस ऑफ इंडियन लेजिसलैंगि असेम्बली, राउटलेज, नई दिल्ली।

टिलिन, लूईस (2013), रीमेकिंग इंडियाः न्यू स्टेट्स एण्ड वेयर पोलिटिकल ओरिजिंस, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली।

टूँबे, चिन्मय (2018), इंडिया मेकिंगः ए हिस्ट्री ऑफ माईग्रेसन, पेंग्यूविन/विकिंग

ड्रेज, ज्याँ एण्ड सेन, अमत्र्य (2013) एन अनसर्टेन ग्लोरीः इंडिया एन्ड इट्स कंट्राडिक्शनस.

दूबे, एस.एम. (1982), इंटर–एथनिक अलायंस, ट्राइबल मूवमेंट्स एण्ड इंटिग्रेशन इन नोर्थ – ईस्ट इंडिया, इन सिंह, के. एस. (एड.) ट्राइबिल मूवमेंट्स इन इंडिया, वोल्यूम–1, मनोहर दिल्ली।

नाग, सजल (1990), सट्स ऑफ एथनिक कंफ्लिक्ट इन असम।

पाई, सुधा (2002) – दलित असर्सन एन्ड द् अनफिनिश्ड डेमोक्रेटिक रिवोल्यूशनः द बहुजन समाज पार्टी इन उत्तर प्रदेश सेज प्रकाशन, न्यू–दिल्ली।

पाई–सुधा, 1990, रीजनल पार्टिज एन्ड द् इमजिंग पैटर्न ऑफ पोलिटिक्स इन इंडिया, इंडियन जर्नल ऑफ पोलिटिकल साइंस, जुलाई सितम्बर।

पालसीकर, सुहास, (2014) पार्टी कम्पीटीसन इन इंडियन स्टेटः इलेक्शेरल पोलिटिक्स इन पोस्ट कांग्रेस पोईनारी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली।

पालस्किार, सुहास 2003, ''द रीजनल पार्टिज एण्ड डेमोक्रेसी। रोमांटिक रेन्डेवोस ओर लोकलाइज्ड लेजिटिममेशन? इन अजम के. मेहरा डी.डी. खन्ना, गर्ट, डब्ल्यू, क्नेक पोलिटिकल पार्टिज एण्ड पार्टी सिस्टम न्यू दिल्ली सेज प्रकाशन।

फ्रांसिन आर. फ्रेंकल एण्ड एम.एस.ए. राव (1989) – डोमिनेंस एण्ड स्टेट पॉवर इन मॉडर्न इंडियाः डिक्लाइन ऑफ सोशल आर्डर, वो. 1, ओ.यू.पी. दिल्ली।

फ्रांसिन आर. फ्रेंकल एण्ड एम.एस.ए. राव (1990) – डोमिनेस एण्ड स्टेट पॉवर इन मॉडर्न इंडियाः डिक्लाइन ऑफ सोशल आर्डर, वो. 2, ओ.यू.पी. दिल्ली।

बक्सी, एम. पी. (2003), द कंस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया, न्यू–दिल्ली यूनिवर्सल लॉ पब्लिसिंग।

बरूआ संजीव, (1999), इंडिया अगेंस्ट इटसैल्फ आसाम एण्ड द् पोलिटिक्स ऑफ नेशनेलिटी यूनिवर्सिटी ऑफ पेन्सिलवेनिया प्रेस।

बर्ग, डाग – एरिक, 2020 – डाथनेमिक ऑफ कास्ट एण्ड लॉ, दलितस ओप्रेशन एण्ड कंस्टीट्यूशनल डेमोक्रेजी इन इंडिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू–दिल्ली।

बसु, डी.डी. 1997 – इंट्रोडक्शन टू द कंस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया न्यू दिल्ली – प्रेंरिस हाल ऑफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड।

बारू, संजय (2021), इंडियाज पॉवर इलिट, कास्ट, व्यवसाय एण्ड कल्चरल रिवोल्यूशन, पेंग्विन विकिंग।

ब्रास, पॉल, आर. (1974), लैंग्वेज रिलिजन एन्ड पोलिटिक्स इन नोर्थ इंडिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रसे कैम्ब्रिज।

ब्रास, पॉल, आर. (1998). द् थेक्ट ऑफ एन आइडोलः टेक्सट एण्ड कोन्टेक्सट इन रिप्रजेन्टेशन ऑफ कलैक्टिव वायलेंस, रीगल बुक्स. कलकत्ता।

भट्टाचार्य, द्वैपायन, (2004). इंटैटागेटिंग सोशल कैपिटल, द इंडियन एक्सपीरियंस, सेज प्रकाशन, नई दिल्ली.

भांभरी, सी. पी. (1974). ''फंक्शनलिज़्म इन पोलिटिक्स, ए रीजोइन्डर'' द् इंडियन जरनल ऑफ पोलिटिकल साइंस के. 35 न. 2, (अप्रैल–जून) 1978 पृष्ठ, 185–191.

भांभरी, सी. पी. (1989). द् इंडियन स्टेटः कोन्फिक्ट्स एण्ड कंट्राडिक्शन इन जोया हसन, एस.एन.इ., रशीदुछ्डीकमं एकान्त द स्टेट, पोलिटिकल प्रोसेसेज एण्ड आइडेंटिटी, न्यू दिल्ली.

मजूमदार, इंद्राणी, एन. नीता, एण्ड इंदू अग्निहोत्री, – ''माइग्रेसन एण्ड जेन्डर इन इंडिया, ''ई.पी.डब्ल्यू., मार्च 9, 2013, वोल्यूम, 48, नं. 10, पेज 54–64.

माथुर, कंचन, 2004 – काउन्टरिंग जेंडर वायलेंस टूवार्डस कलैक्टिव एक्शन इन राजस्थान, सेज प्रकाशन, नई दिल्ली।

मुखर्जी, निर्मल एवं अरोड़ा बलवीर – फेडरेलिज्म इन इंडियाः ओरिजिन एण्ड डेवलपमेंट, विकास न्यू दिल्ली।

मुखर्जी, राहुल, 2014 – पोलिटिकल इकोनोमी ऑफ रिफार्मस इन इंडिया, न्यू–दिल्ली, ऑक्सफोर्ड, यूनिवर्सिटी प्रेस.

मेनन, निवेदिता, 1999 – जेंडर एण्ड पोलिटिक्स इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू–दिल्ली।

मेनर, जेम्स, 1990, ''पार्टिज एण्ड द् पार्टी सिस्टम'' इन अतुल कोहली (एड.) इंडियाज डेमोक्रेसीः एन एनालिसिस ऑफ चेंजिंग स्टेट सोसाइटी रिलेशंसः प्रिंरूटन प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।

यादव, योगेन्द्र (2000), अंडरस्टेंडिंग सेकंड डेमोक्रेटिक अयसर्गः ट्रेडस ऑफ बहुजन पार्टिसियेशन इन इलेक्टोरल पोलिटिक्स इन द् 1990 इन फ्रांसिस, आर. फ्रेंकिल (एड.) ट्राँसफोमिंग इंडियाः सोशल एण्ड पोलिटिकल डायनेमिक्स ऑफ डेमोक्रेसी, ऑक्सफोर्ड ब्रास, चंद्र, कंचन (2004) – व्हाई एथनिक पार्टिज एक्सीड, पेट्रोनेज एन्ड एथानिक हैड काउन्ट इन इंडिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज।

वाष्णेय, आशुतोष, (2013) बैश्ल्स हॉफ–वॉन, इंडियाज इम्प्रोबेबल डेमोक्रेसी पेंगविन/बिकिंग।

विश्वनाथन, एस (2005) ''फिशरमैन एट सी', इन फ्रंटलाइन फरवरी 11।

वीनर, आयरन, (1968) स्टेट पोलिटिकस इन इंडिया, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस

वैष्णव, मिलान, (2011) व्हैन, क्राइम प्लेन, मनी एण्ड मसल इन इंडियन पोलिटिक्स, हार्पर कोलिन न्यू दिल्ली।

शाह, घनस्याम, (2004), सोशल मूवमेंट्स इन इंडियाः ए रिव्यू ऑफ लिटरेचर, सेकन्ड एडिसन, सेज प्रकाशन, न्यू दिल्ली।

शाह, घनस्याम, 2001 – दलित आइडेंटिंडी एण्ड पोलिटिक्स, सेज प्रकाशन।

श्रीधर, वी, (2015), लिविंग ऑन द् एज इन फ्रंटलाइन, फरवरी 11।

श्रीधरम ई. 2002, द् फ्रैगमेंटेशन ऑफ द् इंडियन पार्टी सिस्टम, 1952–1999 सेवन कंपीटिंग एक्सटलेनेशंस इन जोया हसन (एड) पार्टिज एण्ड पार्टी पोलिटिक्स इन इंडिया दिल्ली ऑक्सफोर्ड।

सारंगी, आशा (2009), लैंग्वेज एन्ड पोलिटिक्स इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

सिंह, जगपाल, 2021, कास्ट, स्टेट एन्ड सोसाइटीः डिग्री ऑफ डेमोक्रेसी इन नोर्थ इंडिया, लंदन एण्ड न्यूयार्क राउटलेज।

सुब्रमनियन नरेन्द्र, 2002, ब्रिडिंग सोसाइटी बैक इन एथविसिरी पोपुलिज्म एण्ड प्लूलिज्य इन इंडिया। इन हसन जोया (एड.) पार्टिज एण्ड पार्टी पोलिटिक्स इन इंडिया – ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस न्यू दिल्ली पेज 397–427।

सूद, निकिता (2012) लिबटेलाइजेशन हिन्दू नेशनेलिज्म एन्ड द स्टेट (ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस)

सेज लारेंस, 2002, फेड़रेलिज्म विदाउट ए सेंटरः द् इंपैक्ट ऑफ पोलिटिकल एण्ड इकोनोमिक रिफोर्म ऑन इंडियाज फेडरल सिस्टम, दिल्ली विस्तार।

सेज, लोरंस (2002) फेडरेलिज़्म विदाउट ए–सेंटर, द इंफैक्ट ऑफ पोलिटिकल एण्ड इकोनोमिक टिफोर्म ओन इंडियाज फेडरल लिस्टन, सेज प्रकाशन, दिल्ली।

हसन, जोया, 2002, ''इंट्रोडक्शन, कन्फलिक्ट, प्लूटोलिज्म एण्ड द् कंम्पीटिशन पार्टी सिस्टम इन इंडिया'' जोया हसन (एड.) पार्टिग एण्ड पार्टी पोलिटिक्स इन इंडिया, दिल्ली–ओक्सफोर्ड।

हिरवे, इंदिरा, अमिता शाह (2014) ग्रोथ ओर डवलपमेंटः विच वे इज गुजरात गोइंग. न्यू दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

होरर्ट, हर्टमैन, 1971 पोलिटिकल पार्टिज इन इंडिया, मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन।